प्रकाशक —
श्री रतनचन्द हीरालाल पाटनी
दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट
मारोठ (मारवाड़)

नवम्बर, १९५८

मुद्रक —
नेमीचन्द बाकलीवाल
एम० के० मिलस प्रेस, मदनगंज
(किशनगढ़)

पाठकों से निवेदन

पाठक महोदय,

इस ट्रैक्ट को उपयोग लगाकर ध्यान से पढ़ने की कृपा करें। द्रव्यस्त्री प्रकरणमें एक संजद पद जोड़ देने से दि० जैन धर्मके मौलिक सिद्धांत और आगम परंपरा का विघात होना अवश्यम्भावी है। इसी बातकी (आगम रक्षा की) भारी चिंता से यह ट्रैक्ट लिखा गया है। आद्योपांत पढ़नेके पीछे आप अपनी सम्मति नीचे लिखे पतेपर भेजने की अवश्य कृपा करें।

मक्खनलाल शास्त्री
प्रिंसिपल गो० दि० जैन सिद्धांत विद्यालय
मोरेना (ग्वालियर)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१०	एक भावमें	एक भवमे
१४	७	असत्यद्द	असत्पद्द
१५	२	आगन	आगम
२३	७	सत्यप्ररूपणा	सत्प्ररूपणा
२६	२	काल भावा	कालभवा
३२	५	लेश्यानौ	लेश्यानां
३२	५	जप्यतेन	जघन्येन
५२	७	स रोषामस्ति	स येषामस्ति
५९	१४	पुसमह	पुरुमह
१००	१०	नस	उस

पाठक गण !

इस ट्रैक्टमे और भी कुछ अशुद्धिया प्रेसकी गलतीसे रहगई हों तो पाठक प्रकरण तथा सबन्धको देखकर उन्हें सुधार लेवें।

—मुद्रक

एव समाजके अत्यत आग्रहसे श्री प० मक्खनलालजी शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है। श्री राज्यभूषण सेठ मगनमलजी सा० व रायबहादुर राज्यभूषण सेठ हीरालालजी सा० पाटनी समाज के सुप्रतिष्ठ धार्मिक व्यक्ति है। आपने कई लाख रुपये धार्मिक सस्थाओंके लिए निकाल कर उसका ट्रस्ट भी कर दिया है। मारोठकी सस्थाये आपकी धार्मिकता की पूर्ण द्योतक हैं। सूत्र ९३वे मे सजद शब्द यदि आगमानुकूल है तो कोई हर्ज नहीं। अन्यथा मिथ्यात्वमे जितनी हानि हमारी होती है उससे अधिक इस तीन अक्षरवाले "सजद" शब्दसे होगी इसलिए सब काम छोड़कर इसका पहले विचार होना चाहिये ऐसा राज्यभूषण सेठ मगनमलजी साहब ने कवलाना में स्पष्ट कमेटीके अनेक सदस्योके सामने कहा था। धार्मिक कार्यों के करनेमें उभय बन्धु सतत अग्रसर रहते हैं। हर्ष है उपरोक्त ट्रैक्टको प्रकाशित करने के लिए आपने अपनी स्वीकारता दी। तदनुसार यह ट्रैक्ट प्रकाशित होकर पाठकोकी सेवामें भेजा जारहा है। सम्पादक महोदयने इसमें पूर्वापर विचार कर अपने मतव्य प्रकाशित किये हैं वास्तवमें आगम विषयका निर्णय देनेके पूर्ण अधिकारी वर्तमान समयमे परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शातिसागरजी महाराज ही हैं करीब डेढ वर्ष हुआ कव-

लानामें धवला ग्रन्थकी जो कमेटी हुई थी उसमें निर्णय होकर यही तय हुआ था कि दोनों पक्षके विद्वानोंको बुलाकर इसकी चर्चा की जायगी। और उस पर परम पूज्य आचार्य महाराज जो निर्णय देंगे तदनुसार कमेटी उसको कार्य रूपमे परिणत करेगी। किंतु बहुत समय बीत जाने पर भी यह योजना कमेटी ने अमल में नहीं लाई। द्रव्य तथा भाव पक्षी दोनों ही विद्वानों की तरफ से इस विषयमें काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका है सिद्धान्त रक्षाकी दृष्टिसे धवल कमेटीका अब यह खास कर्त्तव्य है कि कवलाना में किये हुवे प्रस्तावको शीघ्र अमलमें लाकर इस सबंध में परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का शीघ्र आदेश प्राप्त करें। परम पूज्य आचार्य महाराज के चरणोंमें भी यह नम्र निवेदन है कि इस सबन्ध में वे अपना निर्णय शीघ्र देकर समाज मे फैले हुए विवादका अब अंत कर देवें। धार्मिक समाज इस विषय में परम पूज्य महाराजके निर्णयको जानने की बड़ी ही उत्सुकता से प्रतिक्षा कर रही है उनकी आज्ञाको वह शिरोधार्य समझती है अत. इसके लिए अधिक समय न व्यतीत कर शक्यत: वे अपना शीघ्र निर्णय देने की कृपा करेंगे ऐसी प्रार्थना है।

विनीत

तनसुखलाल काला

— श्री वर्धमानाय नमः —

आद्य वक्तव्य
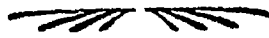
ज्ञानोपयोग विमलं विशदात्म रूपं ।
सूक्ष्म स्वभाव परमं यदनन्त वीर्यम् ॥
कर्मौघ कक्ष दहनं सुख सस्य बीजं ।
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्ध चक्रम् ॥

षट्खंडागमके प्रथम खण्ड जीवस्थान सत्प्ररूपणाके सूत्र ९३ वे में सजद पद जोड देनेसे द्रव्यस्त्री मोक्षसिद्धि और सवस्त्र मोक्ष सिद्धि हुए विना नहीं रह सकती है। ऐसी दशामें उक्त सिद्धांत शास्त्र भी श्वेताम्बर आम्नायका सिद्ध होगा। यह बात षट्खंडागम के प्रथम खण्डके आदिके १०० सूत्रोंसे स्पष्ट है। यदि किसी प्रतिमें 'सजद' शब्द मिलता भी है तो वह लेखककी असावधानी का ही परिणाम है। फिर सभी प्रतियोंमें उक्त पाठ पाया भी नहीं जाता है। अन्यथा अमरावती और सोलापुरसे मुद्रित होने वाली प्रतियोंमें सजद पद क्यो नहीं है? प्रकरण गत विषयका पर्यालोचन करनेसे यह बात बहुत अच्छी तरह सप्रमाण सिद्ध हो जाती है

कि आदिकी चार मार्गणाओं तक शरीर विशिष्ट जीवोंकी मुख्यता से ही भगवद्भूतबलि पुष्पदन्तने निरूपण किया है, उनमें भावों की मुख्यता नहीं है। इसका कारण यह है कि गति इन्द्रिय काययोग और पर्याप्तियोंके लक्षणोंमें पुद्गल विपाकी शरीर नाम-कर्म, और आगोपांग आदि कर्मोंके उदयसे होनेवाली शरीर विशिष्ट जीवकी पर्यायोंका ही ग्रहण होता है।

यह बातभी ध्यान देने योग्य है कि जो बात षट्खंडागमके रचयिता भगवद्भूतबलि पुष्पदन्तने कही है वही बात उसके टीकाकार आचार्य वीरसेनने कही है तथा वही बात सिद्धांत चक्र-वर्ती नेमिचन्द्राचार्यने गोम्मटसारमें कही है और वही बात राजवा-र्तिकालंकारमें भी भट्टाकलंकदेव एवं दूसरे ग्रन्थकारोंने कही है। षट्खंडागमके रचयिता, उसके टीकाकार, तथा गोम्मटसारके रचयिता उसके टीकाकार और राजवार्तिकालंकारके रचयिता इन सबोंकी रचनाओंमें परस्पर कोई भेद हो अथवा मूल ग्रन्थके विरुद्ध टीकाओं में कथन हो सो बातभी नहीं है, इन बातोंका स्पष्टीकरण भी हमने "सिद्धांत सूत्र समन्वय' नामक अपने ट्रैक्टमें कर दिया है।

श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनीने केवल अपनी बातकी तथा अथवा अपने पक्षकी पुष्टिमें "षट्खंडागम रहस्योद्घाटन" नामका ट्रैक्ट लिखा है। उस ट्रैक्टको पढ़कर सिद्धांतवेत्ता विद्वान यह

समझ चुके होंगे कि वास्तवमें उस ट्रैक्टसे षट्खंडागमके रहस्यका उद्घाटन होता है या उसका पूरा विघटन होता है ?

यदि सोनीजी जीवस्थान सत् प्ररूपणा प्रथम खण्डको ध्यान पूर्वक मनन कर लेते तो उन्हे उस ट्रैक्टके लिखनेका प्रयास नहीं करना पडता। यदि उन्होंने षट्खंडागमके प्रथम खंडको समझ लिया है तो आगम विरुद्ध बातोंका समर्थन कर वे समाजको प्रत्यक्ष धोखे में डाल रहे हैं, ऐसा करना उन्हें कदापि उचित नहीं है।

सोनीजीने हमारे ट्रैक्टगत प्रमाणोंका कोई प्रतिवाद भी नहीं किया है। किन्तु दूसरे प्रकरणोंके प्रमाणोंको रखकर केवल "उत्तर हो चुका" इस बातको सिद्ध करना चाहा है। परतु षट्खंडागम के प्रथम खंडका मनन करने वाले विद्वान सोनीजीके उत्तरको असदुत्तर (विपरीत उत्तर) ही समझेंगे।

सिद्धान्त सूत्र समन्वय" ट्रैक्टमें हमने आलापाधिकारके वर्णन में जिन तीन आलापों द्वारा द्रव्यभावका सप्रमाण उल्लेख किया है। तथा द्रव्य शरीर विशिष्ट जीवोंकी गणना द्वारा सख्याका सप्रमाण उल्लेख किया है उन सबोका भी सोनीजीने कोई प्रतिवाद नहीं किया है।

सोनीजीका कर्त्तव्य था कि या तो वे हमारे दिये हुए प्रमाणों में कोई अर्थ दोष या विरुद्ध प्रमाण दिखाते या उन्हे स्वीकार

करते। उन्होंने दोनो बातोंमें से कुछ नहीं किया है। किन्तु बिना प्रकरण और बिना प्रयोजन दूसरे भाव प्रकरणके प्रमाणोंका उल्लेख किया है जो निर्विवाद है और हमें उसके माननेमें कोई आपत्ति नहीं है। और जिन प्रमाणोंसे उन्होंने अपने पक्षकी पुष्टि उनका अर्थ विपर्यास कर की है उसका हमने इस ट्रैक्टमें सप्रमाण प्रतिवाद कर दिया है।

सोनीजीके सभी लेखोंमें यह खास बात रहती है कि वे मूल बातका उत्तर नहीं देते हैं और इधर उधरके अनेक प्रमाण और गम्भीर शब्दोंके नामोल्लेख करके लेखका कलेवर बढा देते हैं, साधारण लोग ऐसे लेखोंको कुछ भी समझें परन्तु विशेषज्ञ विद्वान जो यथार्थ बातका अन्वेषण करते हैं उन्हें नि सार एव भ्रमोत्पादक ही समझते हैं।

सोनीजीने प्रो० हीरालालजीको उत्तर देते हुए जो बम्बई पचायतसे प्रगट किये गये द्वितीय ट्रैक्ट (दि० जैन सिद्धान्तदर्पण द्वितीय अंश) में अपना विस्तृत लेख दिया है उसमें उन्होंने स्वयं अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि "वास्तवमें षट्-खडागमका ९३ वा सूत्र द्रव्यस्त्रीका ही प्रतिपादक है। उसमें सजद पद जोड़नेसे द्रव्यस्त्रीको मुक्ति सिद्धि होगी" आज सोनी जी इस अपने रहस्य विघटन ट्रैक्टमें अपनी इतनी मात्र भूल स्वीकार करते हैं कि "हमें यह खबर नहीं थी कि किसी प्रतिमें सजद पद है"।

परतु सोनोजी ! इतनी भूल स्वीकार करनेसे काम नहीं चलेगा, उस लेखमे तो आपने गोम्मटसार और षट्खडागमके प्रकरणके प्रमाणोके आधार पर ९३ वें सूत्रको द्रव्यस्त्रीका विधायक बनाया है। अब बुद्धि परिवर्तनसे आप अपने पहले लिखित प्रमाणोका प्रतिवाद असदुत्तरो से समाधान कोटि में नहीं ला-सकते हैं।

पीछेसे परिशिष्टके दो पत्र लिखकर आपने नाममात्रकी हमारी भी भूल दिखानेका प्रयास किया है। वह मिथ्या है, विना प्रमाण व हेतुवादके केवल वचनमात्रसे किसी वात का उत्तर या भूल नहीं वताई जासकती है। अस्तु।

इसवर्ष करीब १॥ माह तो हमारा कलकत्ता और विहार के डेप्युटेशन में वीता है। फिर वम्बई रथोत्सव में हमें जाना पड़ा वहासे परमपूज्य श्री १०८ आचार्य महाराजके दर्शनार्थ हम शोला-पुर और वलसग गये। वहासे लौट कर इंदोर व देहली उत्सवोंमें गये। इसी वीचमें श्रीमन्त हिज हाईनेस महाराजा सा० ग्वालि-यर विद्यालयमें पधारे उन्हें मान पत्र दिया गया श्रीमन्त सर सेठ हुकमचन्दजी सा० भी पधारे। वीच २ में कई वार मिनिष्टर साहेब व इन्सपेक्टर जनरल महोदय शिक्षा विभाग भी विद्यालयमें पधारते रहे।

इसलिये सोनीजीके ट्रैक्टका खडन करने का अभी तक हमे अवकाश नहीं मिल पाया, अब हमारी इच्छा थी कि उनके ट्रैक्टकी प्रत्येक बातका अनेक प्रमाणोसे विस्तृत उत्तर दिया जाय वैसी अवस्थामे हमारा ट्रैक्ट उनके ट्रैक्टसे बहुत बड़ा हो जाता। परतु इसी समय हमें पूज्य चुल्लक सूरिसिंहजी महाराजका पत्र मिला उन्होंने लिखा है कि सोनीजीके ट्रैक्टकी सिद्धात विरुद्ध सभी बातोका खडन हमने अपने ट्रैक्टमें कर दिया है, उसे छपने हम बम्बई भेज रहे हैं "चुल्लकजी महाराजके उक्त पत्र को पढ़कर हमारा विचार बदल गया और विस्तृत ट्रैक्ट लिखने की इच्छा हमारी नहीं रही। फिर भी हमने सोनीजी की सिद्धात विरुद्ध बातोंका अतिसक्षेपमें सप्रमाण निरसन एव समाधान इस ट्रैक्टमें किया है।

पाठकोसे निवेदन है कि वे हमारे इस ट्रैक्ट को ध्यान से पढ़ें साथमें सोनीजीका ट्रैक्ट भी सामने रख लेवें। तब उन्हे सोनी जी के कथन में कितना सिद्धात विरोध है यह सहज पता लग जायगा।

प्रकाशक पं० वर्धमानजी शास्त्री

सोनीजीके ट्रैक्टके प्रकाशक श्री प० वर्धमानजी शास्त्री शोलापुर है। सजद पद पर विचार चलते हुए कई वर्ष वीत चुके हैं। परतु वे अभी तक किसी एक पक्षमें अपने विचार स्थिर

नहीं कर पाये हैं, और अपनी तटस्थता प्रगट करते आये हैं। परम पूज्य आचार्य महाराज शान्तिसागरजी ही निर्णयके अधिकारी हैं और धवल कमेटीका ठहराव भी ऐसा ही है। फिर विद्वत्परिषद् द्वारा होने वाले निर्णय में सागर उन्हें भाग नहीं लेना था, उन्होंने भाग लिया परन्तु सही नहीं की वे वहां तटस्थ रहे। अब सोनीजी के ट्रैक्टके प्रकाशकके नाते उन्होंने लिखा है कि यह ट्रैक्ट "आगम युक्ति से युक्त है" इतनी सम्मति देकर क्या अब भी वे तटस्थता नीतिका ही अवलम्बन करेंगे? कम से कम शास्त्रीय विषयों में तो विद्वानोंकी एक निर्णीत कोटि होनी चाहिये। अस्तु। पं० वर्धमानजी शास्त्री सोनीजीके ट्रैक्ट पर तो अपनी सम्मति दे ही चुके हैं अब वे इस हमारे ट्रैक्टका भी ध्यान पूर्वक स्वाध्याय एवं ग्रन्थाधारके प्रमाणोंका मनन कर लेवें, पश्चात वे अपनी सम्मति प्रगट करें कि युक्ति आगम युक्त भाव पक्ष है या द्रव्य पक्ष?

श्री पं० रामप्रसादजी शास्त्री बम्बई

संजद पद के विषयमें सभान प्रसिद्ध प्रौढ़ विद्वान् पं० रामप्रसादजी शास्त्री महोदय (बम्बई) ने बहुत मनन किया था। ९३ वें सूत्रमें संजद पद नहीं होना चाहिये "इस विषयमें विस्तृत ट्रैक्ट उन्होंने लिखे हैं, अनेक लेख भी उनके जैन बोधक व खंडेलवाल जैन हितेच्छु मदनगंजमें प्रसिद्ध हो चुके हैं, उनके लेख

बहुत गंभीर एवं विद्वानोंको मनन करने योग्य हैं खेदके साथ लिखना पडता है कि उक्त शास्त्रीजी महोदय अंत समय तक इस तत्वार्थ पदकी चिंता लेते हुये चैत्र शुक्ला द्वितीया सं० २००५ को सहसा स्वर्गवासी बन गये। समय की गति अनिवार्य है। उनकी आगमानुकूल विद्वत्ताका लाभ अब हम लोग नहीं ले सकेंगे। इसका हमें बहुत दुःख है।

शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज
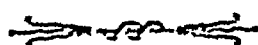
यद्यपि हमारा पहला "सिद्धान्त सूत्र समन्वय" ट्रैक्ट और यह "सिद्धांत विरोध परिहार" ट्रैक्ट वस्तु तत्व समझनेके लिए पर्याप्त प्रमाण है। गति इन्द्रिय काय योग ये चार मार्गणाऐं और पर्याप्ति सबंध जो १०० सूत्रों तक क्रमबद्ध शरीर विशिष्ट चारों गतियोंके जीवोंका स्वरूप निदर्शन कराता है उससे षट्खण्डागमका जीव स्थान सत्प्ररूपणाका ९३ वा सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधायक सिद्ध होता है। इसलिये उस सूत्रमें "संजद" पद सर्वथा नहीं है। यह बात भली भाति सिद्ध हो जाती है।

उक्त चारों मार्गणाओंमें शरीर विशिष्ट जीवोंका ही वर्णन है यह बात हमने इस ट्रैक्ट में बहुत खुलासा अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध कर दी है।

इतना स्पष्टीकरण होनेपर फिरभी यदि श्रीयुत प० पन्नालालजी सोनी, प० खूबचन्दजी प्रभृति भाव पक्षी विद्वान् षट्खण्डागम में भावोंका ही निरूपण कहें और द्रव्य निरूपण नहीं स्वीकार करें

तो करो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है । परतु परम पूज्य आचार्य महाराज एव धवल ट्रस्ट कमेटीके सदस्य चाहें तो हम उक्त सभी भाव पत्ती विद्वानोंको प्रकृत विषय पर शास्त्रार्थका चैलेन्ज देते हैं । शास्त्रार्थका विषय और मध्यस्थ इस प्रकार होगे—

"आदिकी चार मार्गणाऐं द्रव्य निरूपक भी हैं और उसी द्रव्य शरीर विशिष्ट जीवोंकी प्रधानता से षट्खण्डागमका ९३ वाँ सूत्र है । उसमें सजद पद जोड़ देनेसे द्रव्यस्त्रीको मुक्ति सिद्धि अनिवार्य ठहरेगी" बस यही शास्त्रार्थका प्रकृत विषय है ।

यह शास्त्रार्थ केवल मौखिकवाद विवाद रूप में ही नहीं होगा किंतु शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा लिखित होगा । आवश्यकता पड़ने पर शास्त्रोंका आशय ग्रन्थाधारसे एक दूसरे पक्षको शान्ति एव सरलताके साथ समक्षमें समझा भी सकेगा । इसीलिये यह शास्त्रार्थ १०—१२ दिनमें समाप्त हो सकेगा ।

यह शास्त्रार्थ चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शातिसागरजी महाराज के चरणसान्निध्यमें होगा वेही उसके मध्यस्थ एव निर्णायक होंगे । क्योकि सिद्धात शास्त्रके सबधमें निर्णय देनेका अधिकार पात्रानुसार एव धवल कमेटी के ठहरावके अनुसार आचार्य महाराजको ही है । जानकारीके लिये धवल कमेटी के सदस्यों की उपस्थिति भी आवश्यक है ।

यदि परम पूज्य आचार्य महाराज एव धवल ट्रस्ट कमेटी के

सदस्य शास्त्रार्थ की आवश्यकता समझें तो उक्त कमेटी के सदस्य भाव पक्षी विद्वानोंसे शास्त्रार्थ की स्वीकारता लेलेवें और हमें सूचित कर देवें।

यदि आचार्य महाराज और धवल ट्रस्ट कमेटीके सदस्य शास्त्रार्थ की आवश्यकता नहीं समझें अथवा उक्त विद्वान शास्त्रार्थ नहीं करना चाहें तो परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य महाराज से विनम्र निवेदन है कि वे उभय पक्षके ट्रैक्टोंके आधार पर संजद पद विषयक अपना निर्णय घोषित कर देवें। अब अधिक विलम्ब सिद्धान्त शास्त्र एवं दिगम्बरत्व के मूल विघात को स्थायी बना देनेका ही साधक होगा।

धवल कमेटीके सदस्योंका भी कर्त्तव्य है कि वे आचार्य महाराज से निर्णय लेकर समाजमें घोषणा अति शीघ्र करें। क्यों कि कमेटी के ठहराव और सिद्धांत विरोधके परिहारका पूर्ण उत्तर-दायित्व धवल कमेटी पर भी है।

षट्खण्डागम पर हमारे चार ट्रैक्ट

श्री षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्रके सम्बन्धमें हमें चार ट्रैक्ट लिखने पड़े हैं पहला सिद्धान्तशास्त्र और उसके अध्ययनका अधिकार "ट्रैक्ट" है।

इस ट्रैक्टमें हमने आगमप्रमाणोसे यह सिद्ध किया है कि इन सिद्धान्त शास्त्रोके अध्ययनका अधिकार गृहस्थोंको नहीं है किन्तु मुनिराजोको है। सिद्धात शास्त्रोंके अध्ययनसे गृहस्थोंमें सम्यग्ज्ञान वृद्धि तो जो कुछ भी हुई हो परतु दुरुपयोग बहुत अधिक एव सिद्धात विघातक हुआ है। उदाहरणके लिये २—४ बातें इस प्रकार हैं —

१-णमोकार मन्त्र अनादि मत्र नहीं है किंतु इसी पचम कालमें इन्हीं सिद्धात शास्त्रके रचयिताओंने उसे बनाया है। २-द्रव्यस्त्री मोक्ष जा सकती है। ३-सवस्त्र मोक्ष हो सकती है। ४-भाववेद एकभावमें नहीं बदलता है किन्तु द्रव्य वेद एकही भव में बदल जाता है। ५-षट्खडागममे द्रव्यस्त्रीके गुणस्थानोंका विधायक कोई सूत्र नहीं है। ६-वेद वैषम्य का विधायक भी इसमें कोई सूत्र नहीं है। ७-षट्खडागममें भावमार्गणाओका ही वर्णन है। द्रव्यमार्गणाओका नहीं। ८-आलापाधिकारमें द्रव्यका निरूपण नहीं है किन्तु भावका ही है। ९-जीवोंकी सख्या जो गिनाई गई है वह भाव जीवोकी है द्रव्य जीवोंकी (शरीर विशिष्ट जीवोकी) नहीं। १०-मूलग्रन्थ और टीकाकारोमें परस्पर विरुद्ध कथन है। अर्थात् मूलग्रथसे विरुद्ध टीकाएँ रचदी गई है। आदि।

हमारा दूसरा ट्रैक्टः—

"दिगम्बर जैन सिद्धात दर्पण प्रथम अश" है इस ट्रैक्टमे हमने द्रव्यस्त्री मुक्ति निराकरण सवस्त्र मुक्ति निराकरण और केवली

कवलाहार निराकरण अनेक शास्त्रीय प्रमाणों व हेतुवाद से किया है।

तीसरा ट्रैक्ट—

"सिद्धान्त सूत्र समन्वय" है। इस ट्रैक्टमें हमने षट्खंडागम के जीवस्थान सत्प्ररूपणाके प्रथम खण्डमें कही गई मार्गणाओंका स्पष्टीकरण किया है। और आलापाधिकार आदि अनेक आवश्यक बातोंसे सिद्धान्त शास्त्रके सूत्रोंका खुलासा किया है।

चौथा ट्रैक्टः—

यह—"सिद्धान्त विरोध परिहार" नामका है। इसमें आदिकी चार मार्गणाओंका द्रव्य शरीरसे ही मुख्य सम्बन्ध है इस बातको सप्रमाण दिखाया गया है। और पं० पन्नालालजी सोनी महोदय के षट्खण्डागम रहस्योद्घाटन ट्रैक्टका निरसन किया गया है।

पहले तीन ट्रैक्ट मुद्रित हो चुके हैं जो समाजमें सर्वत्र पहुंच भी चुके हैं। यह चौथा ट्रैक्टभी छपने भेजा जा रहा है।

पाठक इन चारो ट्रैक्टोंको बहुत ध्यानसे पढ़ें इनके पढ़नेसे षट्खण्डागम सिद्धान्त शास्त्रके गम्भीर तत्वोंका बोध होगा। इन ट्रैक्टों के लिखनेमें हमें बहुत श्रम पड़ा है और समय भी बहुत लगा है। परन्तु जो सर्वज्ञ कथित एवं गणधर गुम्फित दिगम्बर जैन आगम आजतक अक्षुण्ण एवं निराबाधरूपसे चला आरहा है उसमें सिद्धान्त विघात नहीं हो इसी निरपेक्ष केवल आगम श्रद्धावश

हमने इन ट्रैक्टोंकी रचना की है। इस रचनामें हमने मूलग्रन्थों और उनके ठीक २ अर्थोंका पूरा ध्यान रक्खा है। जो विद्वान गोम्मटसार लब्धिसारक्षपणासार आदि उच्च कोटिके शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन कर चुके हैं उन विद्वानोंके लिये वे चाहे संस्कृत या हिन्दी भाषा भाषी हों तो उन स्वाध्यायशील विद्वानों के लिये ये ट्रैक्ट अधिक उपयोगी हैं।

भाव पक्षी विद्वानों में आवश्यक कर्तव्य पर मौन

इन भाव पक्षी विद्वानोंमें सभी विद्वान् एक मत वाले हैं या उनका परस्पर मतभेद है इस समय यह जानना भी कठिन है। कारण सभी मौनस्थ हैं. इनमें कितने ऐसे हैं जो सभी मार्गणाओं को भाव मार्गणाएँ ही समझते हैं। कितने ऐसे हैं जो भाव वेदको एकभवमें स्थायी और द्रव्यवेदको बदलता हुआ एक ही भवमें मानते हैं कोई गतियोंका अर्थ केवल विग्रह गति कहते हैं कोई नारकादि पर्याय गतिका अर्थ बताते हैं। और भी अनेक ऐसी बातें हैं जिनमें भावपक्षी होने पर भी एक दूसरे से मत भेद रखते हैं परंतु सोनीजीके ट्रैक्ट पर सभी मौन हैं। इसका अर्थ है

कि वे एक "संजद" पदकी सम्हालके लिये एक मनसे बन गये हैं, चाहे आगमका भले ही विपर्यय हो जाय परन्तु बातकी रक्षा हो जाना इस समय मूल ध्येय है। विद्वत्परिषदके विद्वानोंने सागरमें बिना पूरा विचार किये एक प्रस्ताव पर सही कराली थी, जो संजद पद विषयकी गम्भीरताको और उस प्रकरणके अन्तस्तत्वको नहीं समझते हैं ऐसे विशारद और शास्त्रीके छात्रोंसे भी सही ले ली गई थी। ऐसा हमें वहां उपस्थित हुए कई विद्वानोंसे विदित हो चुका है। कलकत्तासे लौटकर हम जब तीर्थराज सम्मेद-शिखरजीकी वंदनाके लिये ईसरी उतरे थे वहां श्रीमान् ब्र० छोटे-लालजी और प० कस्तूरचन्दजी शास्त्रीसे भी यही बात विदित हुई थी, प्रत्युत उक्त दोनों महानुभाव भी प्रकृत विषय पर बिना पूरी गवेषणा किये केवल विशिष्ट व्यक्तियोंसे प्रभावित एवं प्रेरित होकर ही अपनी सही करनेके लिये बाध्य हुए थे यह बात भी हमें उन दोनोंसे विदित हुई है। परन्तु महाआगमके विषयमें बिना शास्त्रीय प्रमाणोंके केवल प्रस्ताव पर सहियों द्वारा मत संग्रह करना सर्वथा अग्राह्य पक्ष है। विद्वत्परिषदके निर्णय पर वहां उप-स्थित हुए प० वर्धमानजी शास्त्रीने अपना मत और वहांकी देखी हुई परिस्थिति का जो दिग्दर्शन जैन बोधकमें कराया है वह किसी भी विद्वान्से अविदित नहीं होगा।

हम एक बार उन समस्त भाव पक्षी विद्वानोंसे निवेदन करते हैं कि वे संजद पदके विषयमें और उसीके निमित्त से उपस्थित

होने वाले द्रव्यवेद परिवर्तन, सभी मार्गणाएं भाव मार्गणाएं हैं आदि विषयों पर वे किसी प्रकार खींचतान नहीं करके सरलताके साथ आगम विदित प्रमाणों एवं पूर्वापर क्रमबद्ध प्रकरणों पर पूरा मनन करें और आगम निर्दिष्ट प्रमाणोंके अनुसार ही अपना मत बनावें। अन्यथा वे हमें बतावें कि हमने जो प्रमाण इस ट्रैक्टमें और पहिले "सिद्धान्त सूत्र समन्वय" ट्रैक्टमें उपस्थित किये हैं वे प्रमाण बाधित हैं या उनका अर्थ वह नहीं है जो हम करते हैं। आगमवादियोंके लिये तो आगम ही मार्ग प्रदर्शक एवं अन्तिम न्यायालयका अटल निर्णय है। उसे स्वीकार करना सभीका मुख्य कर्त्तव्य है।

विद्वच्छिरोमणि धर्मरत्न पूज्य पं० लालारामजी शास्त्री की सम्मति

प्रत्येक विवादस्थ एवं विचारणीय विषयमें हम श्रीमान् पूज्य पं० लालारामजी शास्त्री महोदयकी सम्मति सदैव लेते हैं, वे जैसे समाज प्रख्यात उद्भट विद्वान् एवं महान् अनुभवी हैं उसी प्रकार उनकी सम्मतियां भी बहुत विचार एवं दूरदर्शिता पूर्ण होती हैं, इसीलिये हमने सोनीजीके ट्रैक्ट के पीछे इस ट्रैक्ट के लिखने की

सम्मति चाही थी, उन्होंने हमें निषेधात्मक ही सम्मति इस प्रकार दी थी।

"तुमने सिद्धांत सूत्र समन्वय ट्रैक्ट में संजद शब्द को लेकर सभी बातों का शास्त्रीय प्रमाणों से बहुत विस्तृत खुलासा कर दिया है, उस पर भी यदि ये विद्वान विरोध पक्ष में जा रहे हैं और परमपूज्य आचार्य महाराज किसी भी कारणवश अपना अभिमत नहीं दे रहे हैं तो तुम्हें अब चुप हो जाना चाहिए। निष्पक्ष विशेषज्ञ विद्वान और स्वयं आचार्य महाराज वस्तु स्थिति को समझ चुके हैं"।

उपर्युक्त सम्मति मिलने पर भी हमने पुनः एक बार सोनीजी के ट्रैक्ट से फैलने वाले भ्रम को दूर करने के लिये यह ट्रैक्ट लिखना चाहा और, उनसे सम्मति व आज्ञा मांगी तब उन्होंने कहा कि "लिखना चाहो तो संक्षेप से लिख दो परंतु इस विषय में अब बार बार शक्ति खर्च करना व्यर्थ है"। पूज्य प० जी की सम्मति एवं आज्ञानुसार अब हम आगे इस संबंध में कोई ट्रैक्ट नहीं लिखेंगे।

वैशाख बदी २ स० २००५ | मक्खनलाल शास्त्री
२५—४—४८ | मोरेना (ग्वालियर)

श्रीवर्धमानाय नम.

समर्पण

श्रीमद्विश्वहितंकर, विश्ववंद्य, चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य श्री १०८ आचार्य शिरोमणि श्री शान्तिसागरजी महाराज को ही षट् खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र के विषय में निर्णय देने का अधिकार है, अतः उन्हीं तपोमूर्ति, सिद्धान्त पारंगत परमगुरु आचार्य महाराज के पुनीत कर कमलों मे यह "सिद्धांत विरोध परिहार" ग्रन्थ (ट्रैक्ट) श्रद्धा भक्ति के साथ सादर समर्पित है।

आचार्य चरणसेवी —

मक्खनलाल शास्त्री

* श्री वर्द्धमानाय नमः *

सिद्धान्त विरोध परिहार

(गति इन्द्रिय काय योग पर्याप्तियों का स्पष्टीकरण)
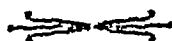
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं,

(अनादि मूल मंत्र)

मार्गणाओं का स्पष्टीकरण

षट खण्डागम सिद्धान्त शास्त्रके जीव स्थान सत्प्ररूपणा प्रथम खण्डके प्रमाणाधारसे अति सक्षेपमें आदि की चार मार्गणाओं-गति, इन्द्रिय, काय, योग और योग सम्बन्धित पर्याप्तियों का स्पष्टीकरण कर देना हम आवश्यक समझते हैं। उनका खुलासा हो जानेसे पाठक यह बात सहज में स्वय समझ लेंगे कि श्रीयुत पं० पन्नालालजी सोनी का ट्रैक्ट कितना भ्रम पूर्ण एव सिद्धान्त विरुद्ध बातों से भरा हुआ है। तथा भावपक्षी विद्वान् षट्खण्डागम,

खुलासा हो जाता है कि मार्गणा जीवों के आधार स्थान हैं। अर्थात् जीव विशिष्ट शरीरों का नाम मार्गणा है। यदि मार्गणा का अर्थ जीवके भाव ही लिया जाता तो जैसे गुणस्थानों का आधार जीव बताया है वैसे मार्गणाओं का आधार भी जीव कहा जाता परन्तु यहां पर लक्षण में गुणस्थान विशिष्ट जीवोंके आधार का नाम मार्गणा कहा गया है इससे स्पष्ट है कि जिन २ गति काय आदि पर्यायों में जीव रहता है उन पर्यायों का नाम ही मार्गणा है। यही बात गोम्मटसार में कही गई है—

"जा हिन जासु व जीवा" यह १४१ वीं मार्गणा विधायक है इसकी संस्कृत टीका यह है—

गत्यादि मार्गणा यदा एक जीवस्य नारकत्वादि पर्याय स्वरूपा विवक्षिता तदा याभि. इतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्ति. यदा एक द्रव्यं प्रति पर्यायाणा मधिकरणता विवक्ष्यते तदायासु" इत्यधिकरणे सप्तमी विभक्तिः गो० जी० पृष्ठ ३५४ इन पंक्तियों का अर्थ जो पं० टोडरमलजी ने लिखा है वही यहां लिख देते हैं गति आदि जे मार्गणा एक जीव के नारकादि पर्यायनि की विवक्षा लीजिये तब तो जिन मार्गणानि करि जीव जानिये ऐसे तृतीया विभक्ति करि कहिये। बहुरि जब एक द्रव्य प्रति पर्यायनि के अधिकरण की विवक्षा "इन विषें जीव पाइये" ऐसी लीजिये तब जिनमार्गणानि विषें जीव जानिये ऐसे सप्तमी विभक्ति करि कहिये।

इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि यातो नारकादि पर्यायोमें जीवों को ढूँढा जाता है या नारकादि पर्यायोंके द्वारा ढूँढा जाता है। हर प्रकारसे जीव की शरीर विशिष्ट पर्यायका नाम ही मार्गणा है।

कर्मोदय जनित अवस्था का नाम मार्गणा है वह जीवकी शरीर विशिष्ट पर्याय पड़ती है। यदि मार्गणा नाम भावोंका लिया जाय तो पहले तो कोई शास्त्राधार नहीं है। दूसरे भावोंका नाम मार्गणा मानी जाय तो फिर गुणस्थानो और मार्गणाओं में क्या भेद रहेगा ? और मार्गणाओंको भाव माननेसे यह प्रश्न होगा कि वे भाव कौनसे गुणोंके हैं, जैसे गुणस्थान आत्माके गुणोंके स्वभाव हैं या विभाव हैं वैसे चार मार्गणाएं जो गति इन्द्रिय काय योग रूप हैं जिनका वर्णन १०० सूत्रों तक है कौन से गुणोंके स्वभाव या विभाव रूप हैं। इनमें इन्द्रिय मार्गणा एक ऐसी है जो भावरूप और द्रव्यरूप है। भावेंद्रियकी विवक्षामें भाव मार्गणा ज्ञानात्मक पड़ती है और द्रव्य मार्गणा शरीर की एक पर्याय विशेष पडती है। शेष गति काय योग ये तीनों मार्गणाऐं एवं पर्याप्तियां केवल जीव विशिष्ट द्रव्य शरीर रूप ही पड़ती हैं वे भाव नहीं हैं। सोनीजीने अपने ट्रैक्टमें नाम कर्मके उदयसे होनेके कारण औदयिक भाव में मार्गणाओंको बताया है। परन्तु मार्गणाऐं कर्मोंका उदय मात्र नहीं है किन्तु उदय जनित अवस्था है। इस मोटी भूलको उन्हें समझ लेना चाहिये।

गति मार्गणा

इसी बातको हम नीचेके प्रमाणोंसे नरक गति आदि मार्गणो में और औदारिकादि शरीरोंमें खुलासा कर देते हैं पहले गति मार्गणा का लक्षण इस प्रकार है—नाम कर्मण समुत्पन्नस्यात्मपर्यायस्य तत कथ चिद्भेदादविरुद्धप्राप्तित. प्राप्त कर्म भावस्य गतित्वाभ्युपगमे पूर्वोक्त दोषानुपपत्ते । भवाद्भवसंक्रान्तिर्वा गति. ।

षट् खण्डागम सत्प्ररूपणा जीवस्थान पृष्ठ १३५

इन पक्तियों का हिन्दी अर्थ जो अमरावती की मुद्रित प्रति में है गति नाम कर्मके उदयसे जो आत्मा की पर्याय उत्पन्न होती है वह आत्मा से कथचित् भिन्न है अत उसकी प्राप्ति अविरुद्ध है। और इसी लिये प्राप्ति रूप क्रियाके कर्मपने को प्राप्त नारकादि आत्म पर्याय गतिपना मानने में पूर्वोक्त दोष नहीं आता है। अथवा एक भवसे दूसरे भवमें जाने को गति कहते हैं। यही बात गोम्मटसार में कही गई है देखिये—

गइ उदयज पज्जाया चउ गइ गमणस्स हेउ वाहु गई

गो० जी० गा० १४६

सस्कृत टीका—गति नाम कर्मोदयोत्पन्न जीव पर्याय स्यैव गतित्वाभ्युपगमात्।

अर्थ—गति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न होने वाली जीव

की पर्याय को गति कहते हैं। और चतुर्गति में गमन करने के कारण को भी गति कहते हैं। परन्तु कारण का स्पष्टीकरण स्वयं टीकाकारने इस प्रकार किया है—

अत्र मार्गणा प्रकरणे गति नाम न गृह्यते वक्ष्यमाण नारकादि गति शब्दवाच्य नारकादि पर्यायस्यैव सम्भवात्

गो० जी० पृ ३६९

अर्थ—यहा मार्गणा प्रकरण मे गति नाम कर्म का ग्रहण नहीं किया जाता है, किन्तु गति नाम कर्म के उदय से जो जीव की नारकी आदि पर्याय होती है उन्हीं का नाम गति है।

अब सोनीजी और उनके साथी विद्वान् बतावें कि गति मार्गणा को वे जीव का भाव किस प्रमाण से बताते हैं? और ऊपर जो मूल और टीकाओं द्वारा जीव की नारकी आदि पर्याय को गति कहा गया है उसका निषेध किस मूल ग्रन्थ और टीका ग्रन्थ से होता है?

आगे सोनीजी लिखते हैं कि "यहा चारों गतियों में अपने अपने कर्म के उदय से होने वाले चार भाव कहे गये हैं चारों गतिया औदयिक भाव हैं जो जीवोंके असाधारण भाव हैं"

(ट्रैक्ट सोनीजी का पृष्ठ ५३)

इन पक्तियों से और ट्रैक्ट की आगे पीछे की पक्तियों से सोनीजी इस बात को बार २ दुहराते हैं कि गति कर्म के उदय

से औदयिक भाव होता है किन्तु नारकी पर्याय तिर्यञ्चपर्याय मनुष्य पर्याय देव पर्याय ये शरीर विशिष्ट पर्यायें नहीं होती हैं।

हम उनसे पूछते है कि ये औदयिक भाव जीव के कौन से भाव हैं उनका स्वरूप तो बताइये। केवल शब्दों से और व्युत्पत्ति मात्र से तो काम नहीं चलेगा चारों गतियाँ केवल कर्मों का उदय मात्र हैं या उन नरकगति तिर्यञ्चगति आदि कर्मों के उदय से होनेवाली नारकी पर्याय हे? नहीं तो बताइये कि वे कौन से भाव हैं यों तो कर्मोदय मात्र ही औदयिक भाव है फिर शरीर नाम कर्म और अगोपाग नाम कर्म के उदय से भी शरीर अंगोपाग की रचना नहीं होनी चाहिये क्यों कि वे भी तो औदयिक भाव हैं और जीव के असाधारण भाव हैं। इन भ्रमात्मक बातों से साधारण समाज भले ही भ्रम में पड़ जाय परतु सिद्धान्त शास्त्रज्ञ विद्वान् ऐसे भ्रम में कभी नहीं आसक्ते हैं।

यहा पर हम १--२ शास्त्रीय उदाहरण देकर यह बता देना चाहते हैं कि गतियों का अर्थ आचार्यों ने क्या किया है।

लेश्या प्रकरण में लेश्याओं के छब्बीस अश बताये गये हैं उनमें आठ मध्यके अपकर्ष अशों में आयु बध होता है और बाकी के अठारह अश जीवों को गतियों में ले जाने कारण है जैसा कि आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोम्मट सारमें लिखा है।

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया
आउग बंधण जोगा अट्ठट्ठवगरिस कालभावा
सेसट्ठारस अंसा चउ गई गमणस्स कारणा होंति
गो० जी० गा० ५१७। ५१८

यहां पर स्पष्ट लिखा है कि शेष अठारह अंश चार गतियों के गमन के कारण हैं। आगे लिखा है कि—

उक्कंस्स सुदा सव्वट्टं जांति खलु जीवा
किण्ण वरं सेण मुदा अवधिट्टाणम्मि
वर काओ दंस मुदा संजलिदं जांत तदिय णिरयस्सा
गो० जी० गा० ५१८, ५२३, ५२१

अर्थ—शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंश से मरे हुए जीव सर्वार्थ सिद्धि को जाते हैं। कृष्ण लेश्याके उत्कृष्ट अंशोंसे मरे हुए जीव सातवीं पृथ्वीके अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिलमें उत्पन्न होते हैं कापोती लेश्या के उत्कृष्ट अंशोंसे मरे हुए जीव तीसरी पृथ्वीके द्विचरम पटल नववीं संज्वलित नामक इन्द्रक बिलमें उत्पन्न होते हैं।

यही बात श्री तत्वार्थ राजवार्तिक आदि सभी शास्त्रोंमें है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि सभी आचार्य नरकगति देवगति आदिसे नारकी जीवों (नारक पृथ्वीमें उत्पन्न हुए नारक शरीर विशिष्ट जीव) और स्वर्गमें उत्पन्न हुए देवों का ग्रहण करते हैं

और इसीलिये गोम्मटसारकार ने ऊपर कहा है कि किस२ गतिमें किस लेश्या मे जीव पैदा होते हैं। गतिसे प्रयोजन किसी भाव का नहीं है जैसा कि सोनीजी करते हैं किंतु उन नारकी आदि शरीर विशिष्ट पर्यायों का है यह स्पष्ट कथन है शकाको कोई जगह नहीं है।

देखिये प्रकृतियोंकी बधव्युच्छित्ति जहां बताई है वहां पर गतियोंका ग्रहण उन्हीं नारकी आदि पर्यायोंसे आचार्यों ने लिया है यथा—

घम्मे तित्थं बंधदि वंसा मेघाण पुण्णगोचेव,
छट्ठोत्तिय मणुवाऊ चरिये मिच्छेव तिरियाऊ

गो० जी० गा० १०६

अर्थ—घर्मानामक पहले नरक की पृथ्वीमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अवस्थाओंमें तीर्थंकर प्रकृति का बध होता है, वशा नाम दूसरे तथा मेघा नाम तीसरे नरकमें पर्याप्त जीव ही तीर्थंकर प्रकृतिको बाधता है, मघवी नामक छठे नरक तक ही मनुष्यायुका बध होता है। और अन्तके माघवी नामक सातवें नरक में मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही तिर्यंच आयुका बंध होता है।

इस कथनसे यह बात सर्वथा खुलासा हो जाती है कि आचार्योंने गतिका अर्थ चारों गतियोंमें रहनेवाले शरीर पर्यायधारी जीव लिये हैं इसीलिये यहापर गतिके प्रकरणमें कहागया है कि किस

किस पृथ्वीमें तीर्थंकर आदि प्रकृतियॉ बॅधती है । यहा पर विग्रह गतिका वर्णन नहीं है स्पष्ट रूपसे पृथ्वी ली गई है । और जीव की पर्याप्त अवस्था भी बताई गई है । यदि सोनीजी गतिका अर्थ जीवके भाव करते है तो बतावें यहा पर वह अर्थ कैसे घटित होगा यहा तो स्पष्ट रूपसे पृथ्वीका नाम लेकर उसमें उत्पन्न हुए नारकी से प्रयोजन है ।

इसी प्रकार सत्वव्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति आदिमें स्पष्ट कथन है सर्वत्र गतिसे ग्रहण आचार्योंने चारों गतियोमें उत्पन्न हुई जीव की पर्यायों रूप किया है । आश्चर्य है कि इन सब स्पष्ट कथनोका सोनीजी केवल अपनी बात की पुष्टिके लिये प्रत्यक्ष लोप कर रहे हैं ।

आगे सोनीजी ने गतिका अर्थ जीव की चेष्टा बताने वाला प्रमाण उपस्थित किया है परतु उसके आशयको छोडकर अपना मतलब सीधा किया है देखिये सोनीजी लिखते हैं—

"गइ कम्मणिव्वता जा चेट्ठा सा गई होई

इस पक्ति का अर्थ सोनीजी करते है कि "गाथाश में गति कर्मके उदयसे जो चेष्टा (भाव) उत्पन्न होता है उस चेष्टा को गति कहा है यह चेष्टा क्या वस्तु है उसका स्पष्टी करण निम्न सग्रह गाथा सूत्रोसे होता है—

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्तेय कालभावेय अण्णोण्णेहि य जह्मा तह्मा ते णारया भणिया तिरियंति कुटिलभावं आदि

ये चारों गतियोंके स्वरूप वाली ४ गाथाऐं उन्होने लिखी है और नीचे लिखा है इन गाथा सूत्रो द्वारा चारों गतिके जीवोंके स्वरूप या स्वभावका वर्णन किया गया है जो कि स्वरूप या स्वभाव उनमें अपनी २ गति कर्मके उदयसे उत्पन्न होता है।"

(सोनीजी का ट्रैक्ट पृष्ठ ५४)

ग्रन्थकारने तो गतिनाम चेष्टाका इसलिये बताया है कि गति कर्मके कार्यके कार्यमें गतिका उपलक्षण किया है यथा गतिकर्म का कार्य जीवकी नारकादि पर्याय है, और उसका कार्य अर्थात् उन नारकादि पर्यायोंमें जीव आपसमें लड़ते है, उठने बैठने आदि में कहीं भी आपसमें प्रेम नहीं करते है इत्यादि कार्य उन पर्यायों में होता है। परन्तु सोनीजी गतिका अर्थ चेष्टा बताकर लड़ना परस्पर एक दूसरे को घानी में पेलना कुटिल भाव रखना आदि भावों को नरकगति बताते हैं। यहा पर हम उनसे पूछते हैं परस्पर लडना वगैरह कार्य कषायो के निमित्त से होता है और वे कषायें मोहनीय का भेद है और गतिकर्म नामकर्मका भेद है यदि कषायभावोंको ही गतिकर्मका कार्य माना जाय अथवा नरक गति मानी जाय तो फिर गुणस्थान और मार्गणाओमें भेद क्या रहेगा सो बता दीजिये ? और कषाय मार्गणाका यहा प्रकरण नहीं

है वहा तो कषायरूप जीवके भावको आधार मानकर गुणस्थानों को बताया गया है। यहां पर तो गतियोंको आधार माना गया है जो जीवके भाव नहीं है।

फिर आपके कथनानुसार यदि इस आपसके लडने मारकाट करने आदि को नरकगति मानी जाय तो भी वह कार्य शरीर विशिष्ट जीवों का धम्मा आदि पृथिवी में उत्पन्न होने वाले जीवों का है नकि आपकी समझके अनुसार विग्रहगतिके जीवोंका है? आपने यहा पर तो स्वय द्रव्यशरी को गति मान लिया है क्योंकि जीवकी चेष्टा शरीर विशिष्ट जीवमें ही पृथिवीमें बताई गई है जैसा कि आपने गाथाओंका प्रमाण दिया है।

सोनीजीको समझ लेना चाहिये कि गति कर्मके तीन लक्षण हैं एक तो कारण रूपसे कहा गया है जैसे नरक आदि गतियोंमें ले जाने वाला कर्म गति कर्म है। एक कार्य रूपसे कहा है कि नारक शरीर जो पहली दूसरी आदि पृथिवीओमें पैदा होता है वह भी गति कर्मका कार्य है। और एक वह जो नारकी आपस मे लडते मरते हैं। यह फल रूप गति कर्मका कार्य है। परतु यह फल रूप कार्य कषायोदय जनित नारकीओंका भाव है वह साक्षात् गुणस्थान है चारित्र मोहनीयका विकार है। इसलिये मुख्य गति कर्मके उदयका कार्य नारक पर्याय तिर्यञ्च पर्याय आदि (भवप्राप्ति-शरीरविशिष्ट जीव) रूप है।

सोनीजी अपने लेखमें उन गंभीर प्रकरणोंके बताने वाले नाम अवश्य लेते है जैसे खुद्दा बंध भगविचय, द्रव्य प्ररुपणानुभव क्षेत्रानुगम अंतर भागाभाग ये नाम वे केवल अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये उल्लेखमें लाते है वास्तवमे उन बातोंका प्रकरण भी नहीं रहता है तब भी वे कहते हैं और जो कहते हैं उसका अर्थ आगमसे विरुद्ध भी पड़ता है। यह भी बता देना चाहते हैं कि उन्होंने जिन नामोंका उल्लेख किया है उनमें भी हम द्रव्य शरीरोंका वर्णन बता देंगे। जैसाकि अपने पहले ट्रैक्ट सिद्धांत सूत्र समन्वयमें बता चुके हैं अधिक जानने वालोंको और भी प्रमाण देंगे।

सोनीजी प्रत्येक कर्मको औदयिक भाव बताकर उसे जीवके असाधारण भाव बताते हैं परंतु लेश्या भी औदयिक भाव है वह एक भाव लेश्या है एक द्रव्यलेश्या है जैसा कि प्रमाण है

लेश्या औदयिक भावा शरीर नाम मोहनीय कर्मोदया पादितत्वात्   राजवार्तिक पृष्ठ १७२

अर्थ—लेश्या औदयिक भाव है क्योंकि शरीर नामकर्म और मोहनीय कर्मके उदयसे पैदा होती है।

यहा पर शरीर नामकर्मके उदयसे द्रव्य लेश्या और मोहनीय-कर्मके उदय से भावलेश्या बताई है। जो भावलेश्या है वह जीवके भाव हैं और जो द्रव्य लेश्या है-वह शरीरका रंग है। अब द्रव्य

यही बात लेश्याओं के अन्तर की है, लेख बढ़नेसे उसे हम छोड़ देते हैं। जहा द्रव्य लिंग का लक्षण बताया है वहा लिखा है—

"नाम कर्मोदयाद्योनि मेहनादि द्रव्य लिंगम्"
राजवार्तिक पृष्ठ ११०

अर्थ——नाम कर्मके उदयसे योनि मेहन(स्त्री की योनि पुरुष का लिंग) आदि द्रव्य लिंग होता है। यहा पर नाम कर्म का उदय बताया है वह तो औदयिक भाव है जीव का असाधारण भाव है परतु उसका कार्य द्रव्य लिंग शरीरमें होने वाला अंग उपाग कैसे बताया? सोनीजी क्या उत्तर देते हैं? ठीक इसी प्रकार गति कर्म भी नाम कर्म है वह औदयिक है परतु उसका कार्य भावात्मक नहीं है किंतु जीव की नारकादि शरीरावस्था है उसी का नाम गति मार्गणा है। इसी द्रव्य मार्गणामें विग्रह गति वाले जीव भी उपचारसे आजाते है। जैसा कि हम अन्यत्र इसी लेख में बता चुके हैं।

शरीर नामकर्म भी औदयिक है यदि सोनीजी के कथनानुसार वह जीवका भाव हो तो फिर यह लक्षण कैसे बनेगा——

औदारिक शरीर नामकरणं औदारिकं वैक्रियिक शरीर नामकरणं वैक्रियक यदि । राजवार्तिक पृष्ठ १०८
अर्थ स्पष्ट है

यदि सोनीजी यह कहें कि जीव विपाकी गति है और पुद्गल विपाकी औदारिकादि शरीर हैं, परतु आप तो सभी मार्गणाओं को भावात्मक ही कहते हो, काय मार्गणा भी आपके मतसे भावा-

है किंतु नरक पर्यायको पाना और नारकी शरीराकार बन जाना बताया है यही बात हम कह रहे हैं। और यह बात प० खूब-चन्दजीने अपनी बुद्धिसे भी नहीं लिखी है। किंतु गोम्मटसारका भी यही भाव है देखिये—

तत्र यदुदयादात्मा भवांतरं गच्छति सा गतिः सा चतुर्विधा-नरक गति. तिर्यग्गतिः मनुष्य गति. देवगतिरिति, तत्रायन्निमित्ता दात्मनो नारक पर्याय· तन्नारकगतिनाम, यन्निमित्तमात्मन. तिर्यग्भवः तत्तिर्यग्नाम, यन्निमित्त मात्मनो मनुष्य पर्याय स्तन्मनुष्यगतिनाम, यन्निमित्त मात्मनो देव पर्यायः तद्देवगतिनाम

गो० जी० सस्कृत टीका पृष्ठ २८

अर्थ स्पष्ट है।

इसी प्रकार जीव विपाकी का अर्थ प० खूबचन्दजीने किया है "और बाकी जो अठत्तर प्रकृत्तिया हैं वे सब जीव विपाकी हैं क्योंकि नारक आदि जीवकी पर्यायोंमें ही इनका फल होता है"

गो० जी० पृष्ठ २८

यही बात गोम्मट सारमें है देखिये—

"अवशिष्टाष्ट सप्ततिः जीवविपाकीति नरकादि जीव पर्याय निर्वर्तन हेतुत्वात्"

गो० जी० पृष्ट २८

अर्थ—जीव विपाकीका अर्थ यही है कि जो जीवकी नरकादि

पर्यायोंको बतानेका कारण है।

श्री राजवार्तिकमें भी गतिका अर्थ जीवका भाव नहीं बताया है किंतु मनुष्य पर्याय (भव प्राप्ति) बताया है यथा - 'मनुष्य गति नाम कर्मोदयापेक्षया आत्मा मनुष्यादित्वेन जायते" राजवा० पृष्ठ १७९ अर्थ—मनुष्य गति नाम कर्मके उदयसे आत्मा मनुष्यपनेसे उत्पन्न होता है।

इस सब कथनसे गतिमार्गणाका अर्थ द्रव्य अथवा व्यञ्जन पर्याय है जो कि जीवकी शरीर विशिष्ट अवस्था है। उसी मार्गणा और काय मार्गणाके सबबसे तथा पर्याप्ति विशिष्ट योग मार्गणाके सबबसे षट् खण्डागमके ९३ वें सूत्रमें द्रव्य स्त्री का वर्णन स्पष्ट सिद्ध होता है, वहां पर संजद पद जोडनेसे द्रव्य स्त्री की मुक्ति और सवस्त्र मोक्ष सिद्धि अनिवार्य सिद्ध होगी जिसका परिणाम श्वेताम्बर मान्यता एवं षट् खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र की दिगम्बर मतसे अमान्यता सिद्ध हुए विना नहीं रहेगी। यह केवल अपनी बात की रक्षा की साधारण बात नहीं है किन्तु दिगम्बर सिद्धान्त का मूल विघात है इस पर सभी को चिन्ता के साथ विचार करना आवश्यक है।

इंद्रिय मार्गणा

इंद्रिय मार्गणा को भी सोनीजी भाव मार्गणा ही कहते हैं, वे कहते हैं कि—

दूसरी इद्रिय मार्गणा है वह भी क्षायोपशमिक भाव जन्य है 'क्षायोपशमिक लब्धि जीव' भाव है तत्वार्थ, सूत्रमें जीवके १८" 'क्षायोपशमिक भाव कहे हैं, उनमें एकेन्द्रियादि क्षायोपशमिक लब्धिया भी अन्तर्भूत हैं; षट् खण्डागमके पचम खण्डमें तो खूब ही विस्तारसे क्षायोपशमिक भाव कहा गया है"

"अतः शरीरके रहते हुए भी ये भाव जीवमें ही होते है, उनका सबध शरीरके साथ नहीं है आदि"

ट्रैक्ट पृष्ठ ५६-५७-६०

सोनीजीने भावेन्द्रिय को क्षयोपशमजन्य भाव बताकर उसका शरीर से सबध नहीं माना है, ठीक है इसमें हमें क्या विरोध है, सोनीजीने पचम खण्ड का प्रमाण दिया है जो क्षयोपशम भावो का विवेचक है इसमें भी हमें कोई विरोध नहीं है परतु जो मूल बात है उसे आप छूते भी नहीं हैं उसका समाधान या खण्डन करना आवश्यक है तब तो आपकी बात सिद्ध हो सकती है, द्रव्य प्रकरण के प्रमाणों को छोड़कर पचम खण्ड और वर्गणा खण्ड तथा खुद्दा बधके प्रमाण देनेसे लाभ क्या है? हमें उनके माननेमें कोई आपत्ति नहीं है परतु हमने जो अपने "सिद्धान्त सूत्र समन्वय" ट्रैक्टमें इद्रिय मार्गणा को द्रव्य मार्गणा भी बताया है उन प्रमाणो का आप क्या उत्तर देते हैं सो तो कहिये? क्या इद्रिय मार्गणामें केवल भावेन्द्रियों का ही ग्रहण है? या पचेन्द्रियो का भी ग्रहण है? जहा तत्वार्थ सूत्र का प्रमाण देकर आप जीवके १८ भावोंमें

अर्थात्---द्रव्येन्द्रियके निमित्तसे ही भावेंद्रिया होती हैं।

आचार्य भूतबलि पुष्पदतने इंद्रिय मार्गणामें दोनों इन्द्रियों का—द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रियका ग्रहण किया है। देखिये—

इन्दियाणु वादेण अत्थि ऐइन्दिया, वीइन्दिया तीइन्दिया चदुरिंदिया पंचेदिया अणिंदिया चेदि। सूत्र ३३

इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य वीर सेन स्वामी ने कहा है कि—

तद् द्विविधं द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियं चेति "निर्वृत्यु-पकरणे द्रव्येंद्रियम्"

तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रिय व्यपदेश भाक्षु: य. प्रति नियत सस्थानो नाम कर्मोदयापादितावस्था विशेष, पुद्गल प्रचयः स वाह्या निर्वृत्ति· मसूरिका कारा अगुलस्यासख्येयभाग चक्षुरिंद्रियस्य बाह्य-निर्वृत्तिः यवनासिकाकारा अगुलस्य असख्येयभाग प्रमिता श्रोत्रस्य वाह्यानिर्वृत्ति· अतिमुक्तक पुष्पसस्थाना अगुलस्यासंख्येयभाग प्रमिता घ्राणनिर्वृत्ति. अर्ध चन्द्रा कारा क्षुरप्रा कारा वा अगुलस्य सख्येय-भागप्रमिता रसननिर्वृत्तिः स्पर्शनेन्द्रिय निर्वृत्तिः अनियतसस्थाना। सा जघन्ये न अगुलस्यअसंख्येयभागप्रमिता, सूक्ष्मशरीरेषु उत्कर्षेण सख्येयघनागुलप्रमिता महामत्स्यादित्रसजीवेषु"

षट् खण्डागम जीवस्थान सत्प्ररूपणा पृष्ठ २३४ २३५

अर्थ— वे इद्रिया दो प्रकार की हैं द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रिय जैसा कि तत्वार्थ सूत्र है—निर्वृत्युपकरणे द्रव्येंद्रियम्"

केवल भाव मार्गणा को ही इद्रिय मार्गणा बता रहे हैं। इन प्रमाणों को तो वे छिपा रहे हैं उनका नामोल्लेख भी नहीं करते हैं। किन्तु जहा केवल भाव का कथन है उस पचम खण्डके, वर्गणा खण्डके और खुद्दाबधके प्रकरणके प्रमाण दिखाकर पाठकों को पूरा दिशाभूल कर रहे हैं क्या यह आगम का लोप या आगम विपर्यय स्पष्ट नहीं है ?

जिस प्रकार ऊपर वाह्य निर्वृत्ति को बताया गया है उसी प्रकार वाह्य उपकरण को भी बताया गया है देखिये––

'तद्द्विविध वाह्यभ्यतर भेदात् तत्राभ्यतर कृष्ण शुक्ल मडल वाह्य मक्षिपत्र पद्मद्वयादि'

(षट् खण्डागम पृष्ठ २३६)

अर्थ––उपकरणके भी दो भेद हैं वाह्य अभ्यतर। अभ्यतर उपकरण नेत्रेंद्रियमें जो काला तिल और सफेद मडल है वह है। और दोनों पलकें तथा दोनों नेत्रोंके रोम (रोंए) आदि वाह्य उपकरण हैं। क्या यह नेत्रो की प्रत्यक्ष रचना द्रव्येन्द्रिय मार्गणा मे षट्खण्डागममें ऊपरके प्रमाणों द्वारा स्पष्ट नहीं बताई गई है ? षट् खण्डागमके इस कथन को भी वे क्या जीवके भाव बताते हैं ?

और भी स्पष्ट द्रव्येन्द्रिय मार्गणा को देखिये––

द्वे इन्द्रिये येषां ते द्वीद्रिया केते शख शुक्ति कृम्पादय त्रीणि न्द्रियाणि येषा ते त्रींद्रिया के ते कुथु मात्कुणादय.

षट् खण्डागम पृ० २४१-२४२

अर्थ—शख सीप लट आदि द्वींद्रिय हैं। तथा कुथु खटमल आदि त्रींद्रिय हैं।

चत्वारि इन्द्रियाणि यषा तो चतुरिंद्रिया के ते मशक मक्षिकादय

पच इन्द्रियाणि येषा ते पचेंद्रिया के ते जरायुजाण्डजादय

षट्खण्डागम पृष्ठ २४५–२४६

अर्थ—मशक मच्छर ये चतुरिंद्रिय हैं। जरायुज अडज आदि पचेंद्रिय हैं।

इन ऊपर के प्रमाणो से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि इन्द्रिय मार्गणामें भावेंद्रिय और द्रव्येंद्रिय दोनों का विवेचन है। द्रव्येंद्रिय मार्गणाका खुलासा तो यहा तक किया है कि जिन जीवों के ये इन्द्रिया होती हैं उन शख मच्छर मक्खी जरायुज अडज आदि शरीरधारी प्राणी इन्द्रिय मार्गणा में आते है।

षट्खण्डागम के आधार पर गोम्मट्टसार में भी यही बात है—

यदि आवरण खओवसमुत्थविशुद्धी हु तज्जवोहोवा
भावेंदिय तु दव्वं देहुदयजदेह चिण्हं तु

गो० जी० गा० १६४

पं० खूबचन्दजी कृत हिन्दी अर्थ-

इन्द्रिय के दो भेद है एक भावेंद्रिय दूसरा द्रव्येंद्रिय। मति ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली विशुद्धि अथव

उस विशुद्धि से उत्पन्न होने वाले उपयोगात्मक ज्ञान को भावेंद्रिय कहते हैं। और शरीर नामकर्मके उदयसे होनेवाले शरीरके चिन्ह विशेष को द्रव्येंद्रिय कहते हैं।

पृष्ठ ६७ गो० जी०

चक्खू सोदं घाण जिव्हायारं मसूर जवणाली
अतिमुत्त खुरप्प समं फासं तु अणेय संठाणं

गो० जी० गा० १७०

पं० खूबचन्दजी कृत हिंदी अर्थ—

मसूरके समान चक्षुका, जवकी नलीके समान श्रोत्र का तिलके फूलके समान-घ्राण का, तथा खुरपा के समान जिव्हा का आकार है। और स्पर्शनेन्द्रियके अनेक आकार है यह सब कथन इन्द्रिय मार्गणा का है। ऐसा ही कथन श्री राजवार्तिकमें ही है परतु अधिक प्रमाण देना व्यर्थ है। प० पन्नालालजी सोनी शरीर विशिष्ट द्रव्यमार्गणाओं का गति इन्द्रिय काय योग पर्याप्ति सर्वत्र स्पष्ट प्रमाणोल्लेख होने पर भी सर्वथा निषेध कर रहे हैं और केवल मार्गणाओंका अर्थ भावमार्गणा ही करते हैं जैसा कि उन्होंने लिखा है परतु ऊपर के प्रमाणों से उनका कथन सर्वथा प्रमाण विरुद्ध प्रत्यक्ष ठहरता है।

सोनीजी ने जो वर्गणा खड, खुद्दाबध पचम खण्ड आदि के प्रमाण दिये हैं वे सब भाव प्रकरणके हैं उन प्रमाणों से हमारे

दिये हुए प्रमाणों का कोई विरोध नहीं है। अत उस विषयमे हमें कुछ वक्तव्य नहीं है।

हा यदि सोनीजी हमारे प्रमाणों का कोई प्रतिवाद करते या उनका अर्थ हमने उलटा लिखा है ऐसा बताते तब तो उत्तर होता। व्यर्थ की वेप्रसग की बाते और भिन्न२ प्रकरणके प्रमाण देकर एक ट्रैक्ट का कलेवर भरने से सिवा समाज को दिशाभूल करने के और क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ है?

अब काय मार्गणा पर प्रमाण लीजिये

सोनीजी काय मार्गणा को भी भावात्मक ही बताते हैं वे लिखते हैं—

सूत्र नं० ३९ से ४६ तक के सात सूत्रोंमें कायकी अपेक्षा जीवोंके भेद प्रभेद कहे गये हैं, यहा पर भी काय की अपेक्षा जीव ही मुख्यतया कहे गये है, समन्वय के कर्त्ता प० मक्खनलाल जी इस कथन को इस प्रकार विपरीत बनारहे हैं कि "काय मार्गणामें औदारिक वैक्रियिक आदि शरीरो का कथन है"

उन सूत्रोमे औदारिकादि शरीरोका कथन दूर रहे उनके नाम

भी हैं क्या ? यह भी जाना जा सक्ता है लेखक महोदयने यहां पर भी जलाहूति दे डाली है," आदि

सोनीजीका ट्रैक्ट पृष्ठ १९–२०

अब हम नीचे दिये गये प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि काय मार्गणामें औदारिक शरीरोंके कथनकी प्रधानता से ही जीवों का कथन है न कि सोनीजीके कथनानुसार शरीरोंका कथन दूर है और उनका नामोल्लेख भी नहीं है। उन प्रमाणोंसे पाठक सहज समझ लेंगे कि सोनीजीके कथनानुसार विपरीत कथन हम करते हैं या स्वय सोनीजी करते है ?

औदारिकादि कर्मभि' पुद्गल विपाकिभिः चीयते इति चेन्न पृथिव्यादि कर्मणा सहकारिणामभावे ततश्चयनानुपपत्ते.

षट्खण्डागम जीवस्थान सत्प्ररूपणा पृष्ठ १३८

इसका खुलासा इतना ही है कि औदारिकादि नामकर्म पुद्-गल विपाकी नाम कर्म और पृथिवी आदि नाम कर्मके उदयसे जो नो कार्माण वर्गणाओं (औदारिक आदि शरीर रूप) का सचय किया जाता है उसीको कार्य मार्गणा कहते हैं।

इसी वातको गोम्मटसारकारने कहा है देखिये—

जाई अविणाभावी तसथावर उदय जो हवे काओ
जो जिण मदम्मि भणिओ पुढवी कायादि छब्भेयो

गो० जी० गा० १८१

प्रकार होता हो तो वह भी स्पष्ट करे। अथवा टीका और मूल ग्रन्थमें कहीं विरोध भी बतावे।

सोनीजी के भ्रम का निवारण

अपने ट्रैक्टमें सोनीजीने एक यह बात सर्वत्र लिखी है कि विग्रह गति वाले जीवोंका ग्रहण कैसे होगा यदि सशरीर जीवोंको गति इन्द्रिय काय आदि मार्गणाओं मे लिया जायगा ? अथवा जीवों की सख्या गिनानेमें यदि शरीर विशिष्ट जीवोका ग्रहण होगा तो विग्रह गति वालोका ग्रहण कैसे होगा ? इस सोनीजीके भ्रम या अजानकारी का समाधान हम षट् खण्डागमके प्रमाणसे ही कर देते हैं वह इस प्रकार- --

कार्माण शरीरस्थाना जीवाना पृथिव्यादि कर्मभिश्चित नो कर्म पुद्गल भावात् अकायत्वं स्यादितिचेन्न तच्चयन हेतु कर्मणा स्तत्रापि सत्वत तद्व्यपदेशस्य न्याय्यत्वात्। अथवा आत्म प्रवृत्युप चित पुद्गलपिण्डः काय।

षट् खण्डागम सत्प्ररूपणा जीव० पृष्ठ १३८

अर्थ—यहा पर यह शका उठाई गई है कि यदि काय मार्गणा त्रस स्थावर जीव विशिष्ट शरीरका नाम है तो विग्रह गति में जहा केवल कार्मण काय योग है पृथिवी आदि कर्मके उदय से सचित होने वाले नोकर्म पुद्गलोका अभाव है वहा पर फिर कायपना नहीं रहेगा अर्थात् काय मार्गणा मे विग्रह गति वाले जीव कैसे आ सकेंगे जब कि वहा पर शरीर नहीं है? उत्तर मे

सोनीजीने विग्रहगति वालोंका कथन करके मार्गणाको भावात्मक बतानेका प्रयत्न किया है परन्तु वह भी सिद्ध नहीं हो सकता है। विग्रहगतिमें शरीर नहीं है परन्तु वहां भी कार्माण शरीर है तथा आत्माकी कर्म जनित पर्याय है वह भी पर्याय द्रव्यकी व्यंजन पर्याय है। आत्माके प्रदेशोंको भी द्रव्यात्मक माना है जैसे कि द्रव्येन्द्रियमें चक्षुरादिके आकार परिणत आत्म प्रदेशोंको भी द्रव्येन्द्रियमें गर्भित किया गया है भाव तो विग्रहगतिमें भी नहीं आता है। सभी मार्गणाओंको भाव भाव कहने वाले सोनीजी प्रकृति बतावें कि काय मार्गणा कैसे जीवके भावरूप है और वह कौनसा भाव है ? और क्या प्रमाण है ?

—

षट् खण्डागममें स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

आत्म प्रवृत्युपचित पुद्गल पिण्ड. काय. ।

षट् खण्डागम पृष्ठ १३८

मुद्रित हिन्दी अर्थ—अथवा योग रूप आत्माकी प्रवृत्तिसे सचित हुए औदारिकादि रूप पुद्गल पिण्ड को काय कहते हैं। अस्तु। काय मार्गणामें औदारिक शरीरका ग्रहण किया जायगा तो सोनीजी यहा तक लिखते हैं।

"ऐसी हालतमें मिथ्यात्वादि गुणस्थान जीवों में न पाये जा कर औदारिकादि जड़ शरीरोंमें पाये जायेंगे उस हालत में मृत शरीरोंमें भी गुणस्थानोंका पाया जाना अनिवार्य हो जायगा"

सोनीजीका ट्रैक्ट पृष्ठ २१

इन पक्तियों को पढ़कर पाठक सोनीजी की इस विद्वत्ता पर उन्हें पुरस्कार देने का भी विचार करें तो आश्चर्य नहीं। कितनी युक्ति युक्त गहरी (?) खोज है।

सोनीजी सभी मार्गणाओं को भाव मार्गणा अथवा जीव के भाव सिद्ध करनेकी धुनमें लगे हुए हैं इस अवस्थामें उनका कथन चाहे आगमसे विरुद्ध पड़े चाहे प्रत्यक्ष एव हेतुवादसे विरुद्ध पडे वे उधरसे दृष्टि विहीन हो गये हैं।

उन्हें यह तो समझ लेना चाहिये कि औदारिक नाम कर्म आदिका उदय जीवके होना है वह मृत शरीरमें कैसे हो सकता

स्थाना जीवानां पृथिव्यादि कर्मभिश्चित नोकर्म पुद्‌गलाभावात् अ-कायत्व स्यादिति चेन्न तच्चयन हेतु कर्मणस्तत्रापि सत्वतः तद्व्यप-देशस्य न्याय्यत्वात । अथवा आत्म प्रवृत्युपचित पुद्‌गल पिण्ड काय

षट् खण्डागम सिद्धांत शास्त्र पृष्ठ १३८

अर्थ—औदारिक आदि कर्म और पुद्‌गल विपाकी कर्मके उदय से जो सचित (शरीर परमाणु-स्कन्ध) किया जाय उसे काय कहते हैं। परतु पृथिवी आदि नाम कर्म ज़ो सहकारी है उसके विना भी काय संचय नहीं हो सक्ता है। कार्मण कायमें स्थित जीवोंके पृथिवी आदि कर्मोंके द्वारा नोकर्म पुद्‌गलोंका अभाव है इसलिये उन जीवोंको (विग्रह गतिवाले) काय पना नहीं आवेगा इस शकाके समाधानमें आचार्य कहते हैं कि कायके सचयके का-रणभूत कर्मका उदय तो विग्रह गतिमें भी है अतः उन जीवोंका भी ग्रहण हो जायगा।

अथवा योग रूप आत्माकी प्रवृत्तिसे सचित हुए औदारिकादि रूप पुद्‌गल पिण्डको काय कहते हैं।

षट्खडागमकी इन पक्तियोंसे स्पष्ट होजाता है कि पुद्‌गल विपाकी, औदारिक नामकर्म, पृथिवी आदि कर्मोंके उदयसे औदा-रिक आदि शरीरविशिष्ट जीवोंका नाम ही पृथिवीकायिक, जलका-यिक नाम पड़ता है। वे ही कायमार्गणामें लिये गये हैं। विग्रह गति वाले जीव भी कर्मोदयसे उपचारसे लेलिये जाते हैं परतु काय

मार्गणामें मुख्यरूपसे शरीर विशिष्ट जीव ही लिये गये हैं। औ
भी खुलासा देखिये—

सूत्र—कायाणुवादेण अत्थि पुढविकायिका आउकायिका
तेउकायिका वाउकायिका वणप्फइकायिका तसकायिका अकायि
चेदि। (षट्खण्डागम जीवस्थान पृष्ठ २६४ सूत्र ३९

इस सूत्रका अर्थ आचार्य वीरसेन स्वामीने इस प्रकार कि
है पृथिवी एव काय पृथिवीकाय स येषामस्ति पृथिवीकायिका
कार्माण शरीरमात्र स्थित जीवाना पृथिवीकायत्वाभाव भाविनि भू
वदुपचार तस्तेषामपि तद्व्यपदेशोपपत्ते। अथवा पृथिवीकायि
नाम कर्मोदय वशीकृता. पृथिवीकायिका एव अपकायिकादीनाम
वाच्यम्। (षट्खण्डागम जीवस्थानपृष्ठ २६५

अर्थ—पृथिवी रूप शरीरको पृथिवीकाय कहते हैं व
शरीर जिन जीवोंके पाया जाता है वे पृथिवीकायिक कहे जाते हैं
ऐसा कहनेसे कार्माण शरीर मात्रमें जो स्थित जीव (विग्रहगतिमें
हैं उनके पृथिवी कायत्वका अभाव होगा क्या ? उत्तरमें कहते
कि भले ही वहा पर पृथिवी जल आदि शरीर नहीं है फिर भी भावि
शरीर तो उनके होने वाला है इसलिये भूतके समान भावीमें भ
उपचारसे वही व्यवहार हो जाता है।

अथवा पृथिवीकायिक नामकर्मोदय वशवर्ती जीव पृथिवी
कायिक और जलकायिक आदि मानना चाहिये।

इन पक्तियोंसे भी स्पष्ट है कि मुख्यरूपसे शरीर विशिष्ट जीवोंका पृथिवीकायिक आदिमें ग्रहण है वही ऐकेंद्रिय जीवोंकी कायमार्गणा है उसमें उपचार से विग्रहगति वाले जीव भी शामिल कर लिये जाते हैं।

जो बात शरीर विशिष्ट जीवोंके ग्रहण की है उसे सोनीजी सर्वथा छोड़कर और जो उपचारसे विग्रहगति वाले जीवोंका ग्रहण है उसे ही मुख्य मानकर अपनी बातकी सिद्धि कर रहे हैं। फिर उनकी बातको भी सज्जन तोष न्याय से मान लेवें तो भी काय मार्गणा कोई जीवके भाव नहीं पड़ते है किंतु पूर्व शरीराकार आत्मप्रदेश पड़ते हैं वह द्रव्यकी व्यजन पर्याय है। जीवके भाव तवभी नहीं आते है फिर भाव मार्गणा सोनीजीकी क्या वस्तु है? सो भगविचय खुद्दाबध आदिका नामोल्लेख करने वाले सोनीजी ही जानें।

यही बात गोम्मटसारमें कही गई है और प० खूबचन्दजीने भी उसीका अर्थ किया है पाठक समझ लेवें—

कायमार्गणा इस प्रकार है—

पुथिवी आऊ तेऊ वाऊ कम्मोदयेण तत्थेव
णिय वण्ण चउक्क जुदो ताण देहो हवे णियमा
बादर सुहम दयेणाय बादर सुहमा हवंति तद्देहा।
घाद शरीरं थूल अघात देह हवे सुहम।

(गो. जी गाथा १८१–१८२)

इन दो गाथाओं का अर्थ प० खूबचन्दजी ने इस प्रकार किया है—

पृथिवी अप तेज वायु इनका शरीर नियमसे अपने२ पृथिवी आदि नामकर्मके उदयसे अपने२ योग्य रूप रस गध स्पर्शसे युक्त पृथिवी आदिकमें ही बनता है।

भावार्थ—पृथिवी आदि नामकर्मके उदयसे पृथिवीकायिकादि जीवोंके अपने २ योग्य रूप रस गध स्पर्शसे युक्त पृथिवी आदि पुद्गल स्कंध ही शरीररूप परिणत हो जाते हैं।

बादर नामकर्मके उदयसे बादर, और सूक्ष्म नामकर्मके उदय से सूक्ष्म शरीर होता है, जो शरीर दूसरेको रोकने वाला हो अथवा जो दूसरेसे रुके उसको बादर (स्थूल) कहते हैं। और जो दूसरे को न तो रोके और न स्वयं दूसरे से रुके उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

(प० खूबचन्दजी कृत अर्थ गो० जी० पृष्ठ ७४)

गोम्मटसार और उसकी प० खूबचन्दजी कृत हिन्दी टीकासे स्पष्ट हो जाता है कि कायमार्गणासे शरीरों का ही ग्रहण है। सोनीजी के कथनानुसार मृत शरिरो का नहीं किन्तु जीव विशिष्ट शरीरोका ग्रहण है। सोनीजी कहते हैं कि कायमार्गणा में शरीर तो दूर रहे उनका नाम भी नहीं है अब सोनीजी पढ़ लेवे कि शरीरोका नाम और कथन कायमार्गणामें है या नही?

अब वे प० खूबचन्दजी से कहें कि ऐसा अर्थ आपने क्यो कर डाला ?

सोनीजी कायमार्गणामें शरीरोंका सर्वथा निषेध करते हुए हमारे लिये लिख रहे हैं कि "समन्वयके कर्त्ता प० मक्खनलालजी इस कथनको इस प्रकार विपरीत बता रहे हैं कि कायमार्गणामें औदारिक वैक्रियक आदि शरीरोंका कथन है" (पृष्ठ २०)

अब वे स्वय समझलें कि कौन विपरीत कथन करते हैं ?

राजवार्तिकमें भी यही बात है देखिये—

पृथिवी कायोऽस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्काय सबध वशीकृत 'आत्मा, समवाप्त पृथिवीकायिक नाम कर्मोदयः कार्माण काय योगस्थः यो न तावत्पृथिवी कायत्वेन गृण्हाति स पृथिवी जीव'

(राजवार्तिक पृष्ठ ८९)

अर्थ—पृथिवी काय जिसके हो वह पृथिवीकायिक कहा जाता है। पृथिवी रूप शरीर संबधसे युक्त आत्मा पृथिवीकायिक कहा जाता है। और जो जीव पृथिवीकायिक नाम कर्मोदय सहित कार्माण काय योगमें ठहरा हुआ जब तक पृथिवी शरीरको नहीं ग्रहण करता है तब तक वह पृथिवी जीव कहलाता है। षट्खण्डागममें जो स्थावर काय वाले जीवोंका काय मार्गणामें कथन है वह पृथिवीकायिक जलकायिक आदि नामोसे है जैसा कि ऊपर मूल सूत्र ३९ वा दिया गया है। पृथिवीकायिक जलकायिक आदि

नाम तभी कहे जाते हैं। जब कि वे जीव पृथिवी शरीर जल शरीर आदि सहित पर्याय (भव) में हों। अन्यथा उन्हें पृथिवी कायिक जलकायिक नहीं कहकर पृथिवी काय एव पृथिवी जीव कहेंगे। इस कथनसे स्पष्ट हो जाता है कि षट् खण्डागमका मूल सूत्र काय मार्गणामें शरीर विशिष्ट जीवका ही विधायक है।

योग मार्गणा के विषय में सोनीजी क्या कहते हैं

योग मार्गणाके विषयमें सोनीजी कहते हैं कि—

"यहभी भाव मार्गणा ही है, क्योकि जीव के भावोंसे उत्पन्न होती है"

काययोग भी मुख्यत. क्षयोपशमसे आत्मलाभ प्राप्त करता है औदारिकादि काययोग इसके भेद हैं, औदारिकादि शरीर इसके भेद नहीं है यद्यपि शरीरोंसे काययोगोंका घनिष्ट सबध है फिरभी औदारिकादि शरीरोंके उत्पन्न होनेकी सामग्री जुदी है"

(ट्रैक्ट पृष्ठ ६३)

पाठक ध्यानसे पढ़लेवे सोनीजी के तर्कों को, वे औदारिक काययोगका शरीरसे घनिष्ठ सबध तो बताते हैं परतु काययोगको

पुद्गल प्रचयकी प्राप्तिको भाषा पर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी आनापान पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। अनुभूत अर्थके स्मरण रूप शक्तिके निमित्त भूत मनो वर्गणा के स्कन्धोंसे निष्पन्न पुद्गल प्रचयको मनः पर्याप्ति कहते हैं। अथवा द्रव्य मनके आलम्बनसे अनुभूत अर्थके स्मरण रूप शक्ति की उत्पत्तिको मनः पर्याप्ति कहते हैं। इन छहों पर्याप्तियोंका प्रारभ युगपत् होता है। क्योंकि जन्म समयसे लेकर ही इनका अस्तित्व पाया जाता है। परतु पूर्णता क्रमसे होती है। तथा इन पर्याप्ति-योंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते हैं।

इस पर्याप्ति निरूपणसे यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि यह सब वर्णन कोई भावों का वर्णन नहीं है किन्तु द्रव्य शरीरों का और द्रव्येंद्रिय तथा द्रव्य मन आदि का भी वर्णन है। यदि इस षट् खण्डागम सिद्धात शास्त्रमें केवल भावों का ही कथन है तब यह द्रव्य वर्णन किस लिये कहा गया है? जब जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरी पर्यायमें पहुँच जाता है और आहार शरीर आदि को अन्तर्मुहूर्त अन्तमुहूर्त पीछे क्रमसे ग्रहण कर लेता है, उसी द्रव्य शरीर' आदिका यह वर्णन है।

इसके साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि यह पर्याप्तियो का कथन बिना सम्बन्ध के भी नहीं कहा गया है किन्तु जिन एकेंद्रिय द्वींद्रिय आदि शरीर विशिष्ट जीवोंका निरूपण षट् खण्डा-गमकार भगवान भूतवलि पुष्पदन्त ने क्रम से गति, इद्रिय, काय,

यह आहार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्तके बिना केवल एक समय में उत्पन्न नहीं हो जाती है। क्योंकि आत्मा का एकदम आहार पर्याप्ति रूपसे परिणमन नहीं हो सकता है। इसलिये शरीरको ग्रहण करने के प्रथम समयसे लेकर एक अन्तर्मुहूर्त में आहार पर्याप्ति निष्पन्न होती है। तिलकी खलीके समान उस खल भाग को हड्डी आदि कठिन अवयव रूपसे और तिलके तेलके समान रस भाग को रस रुधिर वसा वीर्य आदि द्रव अवयव रूप से परिणमन करने वाले औदारिक आदि तीन शरीरोंकी शक्तिसे युक्त पुद्गल स्कन्धों की प्राप्तिको शरीर पर्याप्ति कहते हैं। यह शरीर पर्याप्ति आहार पर्याप्तिके पश्चात् एक अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण होती है। योग्य देश में स्थित रूपादिसे युक्त पदार्थोंके ग्रहण करने रूप शक्तिकी उत्पत्तिके निमित्त भूत पुद्गल प्रचय की प्राप्तिको इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं। यह इंद्रिय पर्याप्ति भी शरीर पर्याप्तिके पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त में पूर्ण होती है। परन्तु इंद्रिय पर्याप्तिके पूर्ण हो जाने पर भी उसी समय बाह्य पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। क्यों कि उस समय उसके उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय नहीं पाई जाती है। उच्छ्वास और निश्वास रूप शक्ति की पूर्णताके निमित्त भूत पुद्गल प्रचयकी प्राप्ति को आनापान पर्याप्ति कहते हैं। यह पर्याप्ति भी इंद्रिय पर्याप्ति के अनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत होने पर पूर्ण होती। भाषा वर्गणाके स्कन्धोंके निमित्तसे चार प्रकारकी भाषा रूपसे परिणमन करने की शक्ति के निमित्त भूत नो कर्म

सापि ततः पश्चादन्तर्मुहूर्तादुपजायते । नचेद्रिंय निष्पत्तौ सत्यामपि तस्मिन्नूत्तणे वाह्यार्थ विषय विज्ञान मुत्पद्यते तदा तदुपकरणाभावात् । उच्छ्वास निस्सरण शक्ते निष्पत्ति निमित्त पुद्गल प्रचया वाप्ति रानापान पर्याप्तिः ऐषापि तस्मा दन्तर्मुहूर्तकाले समतीतेभवेत् । भाषावर्गणायाः स्कन्धाच्चतुर्विधभाषाकारेण परिणामनशक्तेर्निमित्त नो कर्म पुद्गल प्रचयावाप्तिर्भाषा पर्याप्ति. ऐषापि पश्चादन्तर्मुहूर्तादुपजायते । मनोवर्गणा स्कन्ध निष्पन्न पुद्गल प्रचय. अनुभूतार्थस्मरणशक्ति निमित्त मनः पर्याप्ति. द्रव्यमनोऽवष्टम्भेतानु भूतार्थ स्मरण शक्ते रुत्पत्ति' मन. पर्याप्तिर्वा । एतासा प्रारभोऽक्रमेण जन्म समया दारम्य तासा सत्वाभ्युपगमात् । निष्पत्तिस्तु पुन. क्रमेण । ऐतासा मनिष्पत्तिरपर्याप्ति. ।

(षट् खण्डागम जीवस्थान)

अमरावती की मुद्रित प्रतिका हिन्दी अर्थ—

शरीर न म कर्मके उदयसे जो परस्पर अनन्त परमाणुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न हुये हैं, और जो आत्मासे व्याप्त आकाश क्षेत्रमें स्थित हैं ऐसे पुद्गल विपाकी आहार वर्गणा सन्बन्धी पुद्गल स्कन्ध, कर्म स्कन्ध के सम्बन्ध से कथचित् मूर्त पनेको प्राप्त हुए आत्माके साथ समवाय रूपसे सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन खल भाग और रस भागके मेदसे परिणमन करने रूप शक्तिसे बने हुए आगत पुद्गल स्कन्धोकी प्राप्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं ।

पडेगी ? जो बात लक्षण और स्वरूप से स्पष्ट है उसे भी शब्दों की तोड़ मोडमे अन्यथा ही कहते जाना इसे सिवा हटाग्रहके और क्या कहा जाय ? अस्तु ।

पाठकोकी जानकारी के लिये हम षट् खण्डागम सिद्धात शास्त्रमें जो पर्याप्तियोका स्वरूप बताया गया है उसे यहा उद्धृत कर देते हैं । उससे विद्वान पाठक स्वय समझ लेगे कि पर्याप्तियों का स्वरूप शास्त्रोमें क्या है ?

छहों पर्याप्तियोंका स्वरूप इस प्रकार है—

शरीर नाम कर्मोदयात् पुद्गल विपाकिन आहार वर्गणागत पुद्गल स्कन्धा समवेतानतर परमाणुनिष्पादिता आत्मावष्टब्ध क्षेत्रस्था: कर्म स्कन्ध सबन्धतो मूर्तीभूतमात्मान समवेतत्वेन समाश्रयन्ति तेषा॰ मुपगताना पुद्गल स्कन्धाना खल रस पर्यायैः परिणमन शक्ते र्निमित्तानामाप्ति राहार पर्याप्ति. । साच नान्तर्मूहूर्त मन्तरेण समयेनैकेनोपजायते आत्मनोऽक्रमेण तथा विध परिणामाभावात् शरीरोपादान प्रथम समया दारभ्यातर्मुहूर्तेनाऽऽहार पर्याप्ति र्निष्पद्यते । त खल भाग तिलखलोपममस्थ्यादिस्थिरा वयवैस्तिल तैल समान रसभाग रसरुधिर वसा शुक्रादि द्रवावयवै रौदारिकादि शरीर त्रय परिणाम शक्त्युपेताना स्कधानामवादित शरीर पर्याप्ति साहार पर्याप्तिः पश्चादतर्मुहूर्तेन निष्पद्यते योग्यदेशस्थित रूपादिविशिष्टार्थ ग्रहण शक्त्युत्पत्त निमित्त पुद्गलप्रचया वाप्तिरिंद्रिय पर्याप्ति. ।

ग्रहण करता है। सोनीजीके कथनानुसार ही जब जीव पुद्गल द्रव्योको ग्रहण कर औदारिकादि शरीररूपसे परिणमन कराने में समर्थ होता है, उस कारणकी रचना की सपूर्णता शरीर पर्याप्ति है यहा पर वह कारणकी रचना की सपूर्णता क्या वस्तु है यही विचार कर लेना चाहिये क्या समर्थ कारण की सपूर्णता शरीरादि रचना रूप नही पडती है ? अन्यथा कारण की समर्थता और सम्पूर्णता फिर क्या ठहरती है ? यहा पर केवल पर्याप्ति नाम कर्मका उदयमात्र ही पर्याप्ति कहलाती हो सो भी नहीं है उसका निषेध सोनीजी स्वय कर रहे हैं। और पर्याप्ति कोई जीवके भाव हों सो भी सोनीजी नहीं बताते हैं फिर जब पर्याप्ति केवल कर्मोदय भी नही है और पर्याप्ति कोई जीवके भाव भी नही है किन्तु सोनीजी कहते हैं कि शरीरके योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर औदारिकादि शरीर रूपसे उन्हे परिणमन करा देना इस कारण की सपूर्णताका नाम शरीर पर्याप्ति है, यह कारणकी सपूर्णता सिवा शरीर रचना के और क्या है ? सो तो सोनीजी बतावें ? द्राविणी प्राणायाम करनेसे काम नहीं चलेगा, आखिर वस्तु स्वरूप उन्हें बताना होगा कि वह कारण की सामर्थ्य और सपूर्णता क्या वस्तु है ? सोनीजी का यह समस्त विवेचन ठीक वैसा है जैसा कि कोई कहे कि दो और दो मिलकर भले ही चार हों पर हम तो उन्हे चार नहीं कह कर चारकी सामर्थ्य की सम्पूर्णता कहेंगे। कहो भाई वैसा ही कहो परंतु वह चारकी सामर्थ्य की सपूर्णता चार रूप पड़ेगी या तीन

से आहार वर्गणाओके ग्रहणसे शरीर इन्द्रिय आदि का बनना प्रारभ हो जाता है, परतु इन पर्याप्तियो को भी सोनीजी जीव के भाव कहते हैं वे इनका शरीर इन्द्रिय आदि से कोई सबन्ध नहीं बताते है पाठक महोदय सोनीजी के इस विज्ञान पूर्ण अध्ययन का अनुभव कर लेवें वे लिखते है—

"जब कि ससारके सभी प्राणियोके उक्त छहों पर्याप्तियों की रचना करने वाले कर्मोंका उदय निमित्त कारण है तब पर्याप्तियोंसे आनुमानिकी शरीर सिद्धि हो ही जाती हे परतु इसका नाम शरीरों का कथन किया गया यह नहीं है"

(सोनीजीका ट्रैक्ट पृ० ११७)

आगे वे लिखते हैं—

"जिस कारणसे जीव तीन शरीरो के योग्य आहार को खल रस भाग करने में समर्थ हो जाता है उस कारणकी निर्वृति अर्थात् सम्पूर्णता का नाम आहार पर्याप्ति है।

जिस कारणसे शरीर शरीरके योग्य पुद्गल द्रव्योंको ग्रहण कर औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर रूपसे परिणमाने में जीव समर्थ होता है उस कारण की निर्वृत्ति की सपूर्णता का नाम शरीर पर्याप्ति है। आदि'

(सोनीजीका ट्रैक्ट पृ० ११८-११९)

सोनीजी की पक्तियो को पढकर प्रत्येक साधारण जानकार भी समझ लेगा कि पर्याप्तियो शरीरादिके योग्य पुद्गल परमाणुओंको

समझ लेना चाहिये कि शरीर कर्मोदय के साथ आगोपाग आदि विशेष कर्मोंके उदय भी साथ होते हैं और उन्हीका कार्य द्रव्यवेद है। जहा शरीर रचना पूरी होती है वहा अन्य अगोपागोंके साथ योनि मेहन आदि शरीर चिन्ह भी बन जाते हैं। ऐसा नहीं है कि आख नाक कान हाथ पैर योनि मेहन शून्य केवल शरीर का पुतला बन जाता हो अन्यथा निर्माण आंगोपाग आदि विशेष कर्मों का उदय क्या कार्य करेगा ? अतः शरीर के साथ द्रव्यवेद का सबन्ध नहीं है ऐसा सोनीजी का कहना भी सर्वथा निषिद्ध है। और हमारा कहना कि द्रव्य शरीरके साथ ही द्रव्य वेद है आगम और लोक से प्रत्यक्ष सिद्ध है।

पर्याप्ति विचार

पर्याप्ति कर्मके उदय से आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा मन ये छह पर्याप्तिया जीवको प्राप्त होती हैं यह बात बहुत स्पष्ट है कि जीव जब विग्रह गतिसे चल कर जन्म ग्रहण करता है और मिश्र काय योग और काय योगके द्वारा आहार शरीर आदि नो कार्माण वर्गणाओंको ग्रहण करता है तभी पर्याप्त कहलाता है। अर्थात् औदारिकादि शरीर और द्रव्येंद्रिय आदि की प्राप्तिको पर्याप्ति कहते हैं। चाहे उन शरीरादिकी अगोपाग सहित परिपूर्ण रचना नौ मासमें ही क्यों न हो परतु पर्याप्त कर्मके उदय

योग, वैक्रियिक मिश्र और वैक्रियिक काय योग, आदि साधनों द्वारा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, आख नाक कान हाथ पैर रग त्रस पर्याय स्थावर पर्याय, आदि पर्यायोंको पैदा करती है। विग्रह गतिमें शरीर आदि कहा है सोनीजीका यह तर्क भी नि सार है, विग्रह गतिमें केवल कार्माण काय योग है इसलिये वहा शरीर परमाणुओ को ग्रहण करने की योग्यता नहीं है। सोनीजी के कथनानुसार क्या गति कर्मका उदय केवल विग्रह गतिमें ही रहता है या भव प्राप्ति होनेपर नारकादि पर्यायो में भी रहता है? यदि रहता है तो क्या वहा गति कर्मके उदयके साथ शरीर आगोपाग आदि के उदय के साथ शरीर आदि पर्यायो की रचना नहीं है? अवश्य है।

हर एक कार्यके लिये साधनो की योग्यता मिलनी चाहिये और भिन्न २ कार्यों के लिये भिन्न २ कर्मों के उदय कारण हैं फिरभी वे उदय और कार्य अविनाभावी रहते हैं। इसलिये विग्रह गतिका उदाहरण देकर और शरीर आदि कर्मों को गति कर्म से जुदा बताकर जो सोनीजी गति मार्गणामें शरीर पर्यायोका निषेध करते हैं वह कोरा भ्रम है। यह केवल मिथ्या तर्कके द्वारा शरीर आदि प्रत्यक्ष कार्यों का विरोध है जो आगम व लोक दोनो से अमान्य है।

इसी प्रकार सोनीजीका यह तर्क भी मिथ्या तर्क है कि शरीर का और द्रव्य वेद का कोई सवन्ध नहीं है। सोनीजी को

योग, वैक्रियिक मिश्र और वैक्रियिक काय योग, आदि साधनों द्वारा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, आंख नाक कान हाथ पैर रग त्रस पर्याय स्थावर पर्याय, आदि पर्यायोको पैदा करती है। विग्रह गतिमें शरीर आदि कहा है सोनीजीका यह तर्क भी नि·सार है, विग्रह गतिमें केवल कार्माण काय योग है इसलिये वहा शरीर परमाणुओं को ग्रहण करने की योग्यता नहीं है। सोनीजी के कथनानुसार क्या गति कर्मका उदय केवल विग्रह गतिमें ही रहता है या भव प्राप्ति होनेपर नारकादि पर्यायों में भी रहता है ? यदि रहता है तो क्या वहा गति कर्मके उदयके साथ शरीर आगोपांग आदि के उदय के साथ शरीर आदि पर्यायो की रचना नहीं है ? अवश्य है।

हर एक कार्यके लिये साधनों की योग्यता मिलनी चाहिये और भिन्न २ कार्यों के लिये भिन्न २ कर्मों के उदय कारण हैं फिरभी वे उदय और कार्य अविनाभावी रहते हैं। इसलिये विग्रह गतिका उदाहरण देकर और शरीर आदि कर्मों को गति कर्म से जुदा बताकर जो सोनीजी गति मार्गणामें शरीर पर्यायोका निषेध करते हैं वह कोरा भ्रम है। यह केवल मिथ्या तर्कके द्वारा शरीर आदि प्रत्यक्ष कार्यों का विरोध है जो आगम व लोक दोनों से अमान्य है।

इसी प्रकार सोनीजीका यह तर्क भी मिथ्या तर्क है कि शरीर का और द्रव्य वेद का कोई सबन्ध नहीं है। सोनीजी को

समझ लेना चाहिये कि शरीर कर्मोदय के साथ आगोपाग आदि विशेष कर्मोंके उदय भी साथ होते हैं और उन्हीका कार्य द्रव्यवेद है। जहा शरीर रचना पूरी होती है वहा अन्य अगोपागोके साथ योनि मेहन आदि शरीर चिन्ह भी बन जाते हैं। ऐसा नहीं है कि आख नाक कान हाथ पैर योनि मेहन शून्य केवल शरीर का पुतला बन जाता हो अन्यथा निर्माण आगोपाग आदि विशेष कर्मो का उदय क्या कार्य करेगा? अत शरीर के साथ द्रव्यवेद का सबन्ध नहीं है ऐसा सोनीजी का कहना भी सर्वथा निषिद्ध है। और हमारा कहना कि द्रव्य शरीरके साथ ही द्रव्य वेद है आगम और लोक से प्रत्यक्ष सिद्ध है।

पर्याप्ति विचार

पर्याप्ति कर्मके उदय से आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा मन ये छह पर्याप्तिया जीवको प्राप्त होती है यह बात बहुत स्पष्ट है कि जीव जब विग्रह गतिसे चल कर जन्म ग्रहण करता है और मिश्र काय योग और काय योगके द्वारा आहार शरीर आदि नो कार्माण वर्गणाओको ग्रहण करता है तभी पर्याप्त कहलाता है। अर्थात् औदारिकादि शरीर और द्रव्येद्रिय आदि की प्राप्तिको पर्याप्ति कहते हैं। चाहे उन शरीरादिकी अगोपाग सहित परिपूर्ण रचना नौ मासमें ही क्यों न हो परतु पर्याप्त कर्मके उदय

आहार वर्गणाओंके ग्रहणसे शरीर इन्द्रिय आदि का बनना
म हो जाता है, परंतु इन पर्याप्तियों को भी सोनीजी जीव के
। कहते हैं वे इनका शरीर इन्द्रिय आदि से कोई संबन्ध नहीं
ते हैं पाठक महोदय सोनीजी के इस विज्ञान पूर्ण अध्ययन का
नुभव कर लेवें वे लिखते हैं—

"जब कि संसारके सभी प्राणियोंके उक्त छहों पर्याप्तियों की
ना करने वाले कर्मोंका उदय निमित्त कारण है तब पर्याप्तियोंसे
नुमानिकी शरीर सिद्धि हो ही जाती है परंतु इसका नाम शरीरों
ा कथन किया गया यह नहीं है"

(सोनीजीका ट्रैक्ट पृ० ११७)

आगे वे लिखते हैं—

"जिस कारणसे जीव तीन शरीरों के योग्य आहार को खल
म भाग करने में समर्थ हो जाता है उस कारणकी निर्वृत्ति अर्थात्
सम्पूर्णता का नाम आहार पर्याप्ति है।

जिस कारणसे शरीर शरीरके योग्य पुद्गल द्रव्योंको ग्रहण
कर औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर रूपसे परिणमाने में,
जीव समर्थ होता है उस कारण की निर्वृत्ति की सपूर्णता का नाम
शरीर पर्याप्ति है। आदि"

(सोनीजीका ट्रैक्ट पृ० ११८-११९)

सोनीजी की पक्तियों को पढ़कर प्रत्येक साधारण जानकार भी
समझ लेगा कि पर्याप्तियों शरीरादिके योग्य पुद्गल परमाणुओंको

ड़ेगी ? जो बात लक्षण और स्वरूप से स्पष्ट है उसे भी शब्दों
ो तोड़ मोड़मे अन्यथा ही कहते जाना इसे सिवा हटाग्रहके और
या कहा जाय ? अस्तु ।

पाठकोकी जानकारी के लिये हम षट् खण्डागम सिद्धात
ाास्त्रमें जो पर्याप्तियोंका स्वरूप बताया गया है उसे यहा उद्धृत
कर देते हैं । उससे विद्वान पाठक स्वय समझ लेगे कि पर्याप्तियों
का स्वरूप शास्त्रोंमें क्या है ?

छहों पर्याप्तियोंका स्वरूप इस प्रकार है—

शरीर नाम कर्मोदयात् पुद्गल विपाकिन आहार वर्गणागत
पुद्गल स्कन्धा. समवेतानतर परमाणुनिष्पादिता आत्मावष्टब्ध
क्षेत्रस्था. कर्म स्कन्ध सबन्धतो मूर्तीभूतमात्मान समवेतत्वेन समाश्रय-
न्ति तेषा मुपगताना पुद्गल स्कन्धाना खल रस पर्यायै· परिणमन·
शक्ते र्निमित्तानामाप्ति राहार पर्याप्तिः । साच नान्तर्मूहूर्त मन्तरेण
समयेनैकेनोपजायते आत्मनोऽक्रमेण तथा विध परिणामाभावात्
शरीरोपादान प्रथम समया दारभ्यातर्मुहूर्तेनाऽऽहार पर्याप्ति र्निष्प-
द्यते । त खल भाग तिलखलोपममस्थ्यादिस्थिरा वयवैस्तिल तैल
समान रसभाग रसरुधिर वसा शुक्रादि द्रवावयवै रौदारिकादि शरीर
त्रय परिणाम शक्त्यु पेताना स्कधानामवाप्ति. शरीर पर्याप्ति साहार
पर्याप्तेः पश्चादतर्मुहूर्तेन निष्पद्यते योग्यदेशस्थित रूपादिविशिष्टार्थ
ग्रहण शक्त्यु त्पत्ते निमित्त पुद्गलप्रचया वाप्तिरिंद्रिय पर्याप्तिः ।

मापि तन पश्चादन्तर्मुहूर्तादुपजायते । नचेन्द्रिय निष्पत्तौ मत्यामपि तस्मिन्क्षणे बाह्यार्थ विषय विज्ञान मुत्पद्यते तदा तदुपकरणाभावात्। उच्छ्वास निस्सरण शक्ति निष्पत्ति निमित्त पुद्गल प्रचया वाप्ति रानापान पर्याप्ति एषापि तस्मा दन्तर्मुहूर्तकाले समतीतेभवेत। भाषावर्गणाया स्कन्धाचतुर्विधभाषाकारेण परिणमनशक्तेर्निमित्त नो कर्म पुद्गल प्रचयावाप्तिर्भाषा पर्याप्ति एषापि पश्चादन्तर्मुहू-र्तादुपजायते । मनोवर्गणा स्कन्ध निष्पन्न पुद्गल पचय अनुभू-तार्थस्मरणशक्ति निमित्त मन पर्याप्ति द्रव्यमनोऽवष्टम्भेतानु भूतार्थ स्मरण शक्ते रुत्पत्ति मन पर्याप्तिर्वा एतासा प्रारम्भोऽ-क्रमेण जन्म समया दारभ्य तासा सत्वाभ्युपगमात् । निष्पत्तिस्तु पुन. क्रमेण । एतासा मनिष्पत्तिरपर्याप्ति ।

(षट् खण्डागम जीवस्थान)

अमरावती की मुद्रित प्रतिका हिन्दी अर्थ—

शरीर नाम कर्मके उदयसे जो परस्पर अनन्त परमाणुओं के सम्बन्ध से उत्पन्न हुये हैं, और जो आत्मासे व्याप्त आकाश क्षेत्रमें स्थित हैं ऐसे पुद्गल विपाकी आहार वर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्ध, कर्म स्कन्ध के सम्बन्ध से कथचित् मूर्त पनेको प्राप्त हुए आत्माके साथ समवाय रूपसे सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उन खल भाग और रस भागके भेदसे परिणमन करने रूप शक्तिसे बने हुए आगत पुद्गल स्कन्धोकी प्राप्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं ।

योग इन मार्गणाओं द्वारा किया है उन्ही जीवों के सम्बन्ध से पर्याप्तियों को बताया है। यह बात भी आचार्य वीरसेन स्वामी ने स्वय स्पष्ट की है वह देखिये इन्ही पर्याप्तियो के वर्णन के अन्त में वे लिखते हैं—

एकेंद्रियाणां भेद मभिधाम साम्प्रत द्वींद्रियादीणां भेदमभि धातु काम उत्त' सूत्र माह—

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता तींदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चतुरिंदिया दुविधा पज्जत्ता अपज्जत्ता पचेंदिया दुविहा पज्जत्ता अपजत्ता असण्णि दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि। ३५

षट् खण्डागम सत्प्ररूपणा जीव स्थान पृष्ठ २५७ २५८

अर्थ—ऐकेंद्रियोंके भेदोंको कहकर अब द्वींद्रिय आदि जीवों के भेदों को कहने की इच्छा रखने वाले आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं—द्वींद्रिय दो प्रकार के हैं पर्याप्त अपर्याप्त, त्रींद्रिय दो प्रकारके हैं पर्याप्त अपर्याप्त चतुरिंद्रिय दो प्रकार के हैं पर्याप्त अपर्याप्त पञ्चेंद्रिय दो प्रकार के हैं पर्याप्त अपर्याप्त, सज्ञी दो प्रकारके हैं पर्याप्त अपर्याप्त असज्ञी दो प्रकार के है पर्याप्त अपर्याप्त।

इस मूल सूत्र कथनसे और पर्याप्तियोंके सम्बन्ध से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिन द्रव्य शरीरादि रूप पर्याप्तियों का लक्षण स्वरूप ग्रन्थकार ने किया है उन्हीं का द्वींदिय आदि जीवों के साथ सम्बन्ध हैं। और यही कथन इसी क्रमसे तिर्यंचों के पीछे

के साथ होनेसे भव धारण रूप पर्यायोंका ही ग्रहण होता है।

पर्याप्ति प्रकरण में यह बात बहुत ही खुलासा हो जाती है कि वे द्रव्य शरीर एवं जन्मसे सम्बंध रखती है देखिये धवलाकार लिखते हैं—

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुदि जाव असजद सम्माइट्ठित्ति।

(षट् खण्डागम सूत्र ७१)

इसका अर्थ यह है कि ये छहों पर्याप्तिया संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असजद सम्यग्दृष्टि (चौथे गुणस्थान) तक ही होती है। इसके नीचे धवलाकारने अनेक शकाएँ उठाकर यह समाधान किया है कि चौथे गुणस्थानसे ऊपर पर्याप्तिया इसलिये नहीं मानी गई हैं कि उनकी समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही हो जाती हैं उसका भी कारण यह बताया गया है कि जीवोका जन्म मरण चौथे तक ही होता है। इसीके साथ यह बात भी कही गई है कि तीसरे गुणस्थान में अपर्याप्त काल इसलिये नहीं है कि वहा जीवोंका मरण नहीं होता है।

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि पर्याप्तियो का सम्बन्ध जीवकी उत्पत्तिसे और शरीर इन्द्रिय आदि द्रव्य रचनासे है। १४ चौदह गुणस्थानों तक जहा पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षासे कथन है वहा पुरुष शरीर की अपेक्षा से है और भाववेदी वेदमें भी उसी अपेक्षासे उपचारसे घटित किया गया है।

सत्वापत्ति. ? न, देवगति व्यतिरिक्त गतित्रय सम्बद्धायुषोपलक्षिता नामणुव्रतोपादान बुद्धयनुत्पत्ते उक्तञ्च—

चत्तारि वि खेत्ताइ आउगबधे वि होइ सम्मत
अणु वद महव्व याइ ण लहइ देवा उग मोत्तुं
(धवला पृष्ठ १६३)

अर्थ – जिन मनुष्योंने मिथ्यादृष्टि अवस्थामें तिर्यञ्च आयु का बध कर लिया है पीछे सम्यग्दर्शन के साथ देश सयम को भी प्राप्त कर लिया है ऐसे मनुष्य यदि सात प्रकृतियों का क्षय करके मरण करें तो वे तिर्यञ्चोंमें क्यों उत्पन्न नहीं होंगे ? वैसी अवस्था में उन तिर्यंचोके अपर्याप्त अवस्था में देश सयम अर्थात् पाचवां गुणस्थान भी पाया जायगा ? इस शकाके उत्तर में धवलाकार कहते हैं कि—नहीं पाया जायगा, क्योंकि देव गतिको छोड़कर शेष तीन गति सबधी आयु बध युक्त जीवोंके अणुव्रतो के ग्रहण करनेकी बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती है। इसके प्रमाणमें धवलाकार ने गोमटसार कर्म काड की गाथा का प्रमाण भी दिया है कि चारों गतियों की आयु के बध जानेपर भी सम्यग्दर्शन तो हो सक्ता है परतु देवायुके बध को छोड़कर शेष तीनों गति सबन्धी आयु बध होने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत ग्रहण नहीं कर सकता है।

इस कथनसे इस बातका खुलासा हो जाता है एक तो यह कि पर्याप्ति अपर्याप्तियों का सबन्ध केवल द्रव्य शरीर से ही है।

अर्थात् औदारिक शरीरगत षट् पर्याप्तियोंकी पूर्णताकी अपेक्षा तो वह छठे गुणस्थान वर्ती साधु पर्याप्तक ही है किंतु आहार शरीरगत पर्याप्तियों की पूर्णता नहीं होने से वह अपर्याप्तक कहलाता है।

इस समस्त सूत्र कथनसे सोनीजीका बार २ यह कहना कि भावस्त्री के भी पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण हैं और १४ चौदह गुणस्थान तक बताये गये हैं सर्वथा बाधित एवं षट् खण्डागम के विरुद्ध है। उन्होंने मूल बातको छिपाकर चौदह गुणस्थानो को भावस्त्रीके साथ पर्याप्त अवस्था में बताने का प्रयत्न कर पूरा दिशा भूल किया है। भावस्त्री के चौदह गुणस्थान अवश्य बताये गये हैं और पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण भी दिये गये हैं। परतु वे विशेषण पुरुष शरीरके साथ सवन्ध रखते हुये ही भावस्त्रीमें उपचारसे विवक्षा वश घटित किये गये हैं। अर्थात् पुरुष यदि द्रव्य शरीर से पर्याप्त है तो उसके भावस्त्री वेदमें चौदह गुणस्थान होगे यदि वह पुरुष द्रव्य शरीर से पर्याप्त नहीं है तो उसके भावस्त्री वेदोदय में चौदह गुणस्थान नहीं हो सकते हैं। हा केवली के अपर्याप्त अवस्था में भी जो सयम गुणस्थान कहे गये हैं वो समुद्घात की अपेक्षामात्र से है औदारिक शरीर तो वहा पर पर्याप्त ही है। यदि ऐसा नहीं माना जावे तो फिर अपर्याप्त अवस्था में सयम की प्राप्तिका निषेध धवलाकार कैसे करते? अत. पचम

खण्ड वर्गणा खण्ड आदिके प्रमाण देकर सोनीजी दिशा भूल कर रहे हैं। ऊपरके सूत्र एव धवलाके प्रमाणों से बहुत खुलासा यह बात सिद्ध हो जाती है कि पर्याप्ति अपर्याप्तिका सबध जीवके द्रव्य शरीर अथवा जन्मसे है। द्रव्य शरीर की अपूर्णता और पूर्णतासे है।

जो बात हमने ऊपर तिर्यंच गति के जीवोके विषयमें सम्यक्त्व और देश सयम को लेकर पर्याप्ति अपर्याप्ति के सबन्धसे कही है वही बात नारकी मनुष्य देवगतिके जीवोके विषयमें भी पर्याप्ति अपर्याप्तिके सबन्धको लेकर धवलाकार और सूत्रकार भगवद्‌भूतवलि पुष्पदत ने कही है। और यही क्रम बद्ध सबन्ध गति इद्रिय काय योग और पर्याप्ति अपर्याप्तिके निमित्तसे षट् खण्डागम जीवस्थान सत्प्ररूपणाके १०० सूत्रो तक बराबर द्रव्य शरीर और तदन्तर्गत द्रव्यवेदके साथ सूत्रकार और धवलाकार ने स्पष्ट रूपसे बताया है। उस प्रकरण और उन प्रमाणोको सोनीजी कहा ले जायेंगे ? और क्या अर्थ करेंगे ? अत. निर्विवाद और स्पष्ट बात में भी सोनीजी और प० खूबचन्दजी प्रभृति विद्वानोंने निराधार एव निर्मूल विवाद खड़ा कर दिया है यह बहुत ही खेदप्रद और आश्चर्यकारी बात है। यही बात हमने अनेक सूत्रोंका प्रमाण देकर अपने पहले "सिद्धात सूत्र समन्वय "ट्रैक्टमें' लिखी है। परंतु उन प्रमाणोका कोई विचार नहीं करके सोनीजीने दूसरी २ बातों द्वारा तथा भाव प्रकरण के प्रमाणों द्वारा "उत्तर दिया गया" केवल इस बात को समाजके सामने रख दिया है। सभी समाज इतनी गभीर बातोको

नहीं समझता है इसी परिस्थिति मे संजद पद की बात विवाद में लाई गई है परतु षट् खण्डागमके सत्प्ररूपणा जीव स्थानके प्रथम खण्डका कथ वर्णन इतना स्पष्ट है कि कितने ही विद्वान् मिलकर भी विपर्यास करें तो वह छिपाया नहीं जा सका है आश्चर्य तो इस बातका है कि केवल अपनी बातकी रक्षा के लिये इन सोनी जी जैसे विद्वानों ने आगम के प्रमाणों की कुछभी परवा नहीं की प्रत्युत. प्रो० हीरालालजी के खण्डनमें लिखे गये अपने पहले लेखोंका भी वे स्वय खण्डन कर रहे हैं और लिखते हैं कि हमारी तो इतनी ही भूल है कि हमें यह पता नहीं था कि संजदपद प्रतियों मे मिलता भी है। परन्तु सोनीजी का लेख "प्रतियों में संजद पद है या नहीं" इस दृष्टिकोणसे नही लिखा गया है किंतु उन्होंने ९३ वे सूत्रको द्रव्यकी साधक आगे पीछेके अनेक प्रमाण दिये हैं। आज वे प० खूबचन्दजीके साथ सशोधन कार्य हाथ में लेकर उनकी हा में हां मिलाने लग गये और परिशिष्ट के दो पन्ने जोड़ कर झूठ मूठ हमारी भी भूल बताने लगे हैं। परन्तु वास्तविक भूल किधर है? हम भूल कर रहे हैं या आप लोग कर रहे हैं यह बात कभी तो षट् खण्डागमके प्रथम खडकी गवेषणा करने वालों द्वारा निर्णय कोटिमें आवेगी। सोनीजीने हमारे सिद्धात सूत्र समन्वय ट्रेक्टके प्रमाणोंका कोई उत्तर नहीं दिया है केवल भाव मार्गणा भाव मार्गणा की पुनरावृत्ति की है जो भाव प्रकरण की है प्रथम खण्डको स्पर्श भी नहीं करती है। यदि भाव मार्गणा

का ही षट् खण्डागमकारने वर्णन किया होता तो द्रव्य मार्गणाओं का लक्षण, जीवोंकी भव प्राप्ति रूप शरीर पर्यायोका कथन औ पर्याप्तियोका कथन क्या उन्होंने विना प्रसग किया है ? या चार मार्गणाओंके स्वरूपमें क्रमसे कहा है ?

हम तीन ट्रैक्ट इसी षट् खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र के सम्बन्ध में वैपरीत्य, भ्रम एवं आचार्यके प्रमाणो के विरुद्ध प्रति पादन निवारणार्थ लिख चुके हैं वे तीनों ट्रैक्ट छपकर समाज के सामने पहुँच चुके हैं । अब हम कोई ट्रैक्ट नहीं लिखना चाहते हैं । इसी लिये इस लेख मे और भी अनुयोग द्वारोंमें आये हुए भाव और द्रव्य प्रमाणोंको नहीं दिखाना चाहते हैं । अन्यथा यह भी बडा ट्रैक्ट बन जायगा ।

जीवोंकी सख्याके प्रकरणमें भी षट् खण्डागम और गोम्मट-सारमें द्रव्य मनुष्य द्रव्यस्त्री आदिकी सख्या गिनाई है। यह बात बहुत स्पष्ट है हम प्रमाण पहले ट्रैक्टमें दे चुके हैं अब यहा देना व्यर्थ है । आलाप अधिकारको लेकर ये सभी विद्वान् कहते थे कि यह केवल भावोंका निरूपण करता है परन्तु जब हमने अनेक प्रमाण देकर यह बात स्पष्ट कर दी कि आलापाधिकारमें द्रव्य भाव दोनों का ही समावेश है तबसे आलाप अधिकार की बात अब वे नहीं कहते हैं ।

वर्णन किया है वहा शरीर विशिष्ट जीवोंको लेकर ही वर्णन किया है। पाठकोंकी जानकारी के लिये १-२ प्रमाण यहा दे देते हैं—

पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइए सु मिच्छादिट्ठि असजद सम्मादिट्ठीणमतर केवचिर होदि णाणा जीव पडुच्चणत्थि अतर णिरंतर २८ पृष्ठ २७ पचमखण्ड

अर्थ— प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक के नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टि जीवोंका अतर कितने काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अतर नहीं है निरतर है।

यह मूल सूत्र है इसकी टीकामें आचार्य वीरसेन कहते हैं—

कुदो मिच्छादिट्ठि असजद सम्मादिट्ठिविरहिद सत्तम पुढवी णेरइयाण सव्व काल मणुवलभा

अर्थ-क्योंकि मिथ्यादृष्टि और असयत सम्यग्दृष्टियों से रहित सातों पृथिवीओंमें नारकियों का सर्वकाल अभाव है अर्थात् सातों पृथिवीयों में नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव सदैव पाये जाते हैं कभी उनका अभाव नहीं होता है इसलिये उनका अतर भी नहीं है।

सोनीजी कहते हैं कि षट् खण्डागममें भावोंका ही वर्णन है द्रव्य (शरीर विशिष्ट जीवोंका) वर्णन नहीं है। सो वे अब इस मूल सूत्रको ध्यानसे पढलेवें। जब सातों पृथिवियोंका स्पष्ट उल्लेख और उनमें उत्पन्न होने वाले नारकियो का स्पष्ट वर्णन है। तब फिर उनका कहना ग्रन्थाधार से विरुद्ध स्पष्ट है।

अब मनुष्य गतिका अंतर और बता देते हैं—

मणुस गदीए मणुस-मणुस पज्जत्त मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणा जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। सूत्र ५७ षट् खण्डागम ५ वां खण्ड

अर्थ—मनुष्य गतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, और मनुष्यनियों मे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अंतर कितने काल तक होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अंतर नहीं है निरंतर है। यहां पर मनुष्य और मनुष्यणी द्रव्य शरीर वाले हैं।

यह तो सामान्य कथन है विशेष एक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार है—

गदो लद्धमतर । सम्मत्त पडिवज्जिय मदो देवो जादो एगूण वण्ण दिवसब्भहियणवहि मासेहि वे अंतोमुहुत्तेहिय ऊणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि मिच्छत्तुकस्संतर जाद एव मणुस पज्जत्त मणुसिणीसु वत्तव्व भेदाभावा ।

षट् खण्डागम पचम खण्ड पृष्ठ ४७

अर्थ—उनमेंसे पहले सामान्य मिथ्यादृष्टिका अतर कहते हैं वह इस प्रकार है—मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य जीव तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । नौ मास गर्भमें रहकर निकला फिर उत्तान शय्या वाले अगुष्ठको चूसते हुए सात, रेंगते हुए सात, अस्थिर गमनसे सात, स्थिर गमनसे सात, कलाओंमें सात, गुणोंमें सात, तथा और भी सात दिन बिताकर विशुद्ध हो वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ, पश्चात् तीन पल्योपम बिताकर, मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, इस प्रकारसे अतर प्राप्त हो गया, पीछे सम्यक्त्वको प्राप्त हो कर मरा, और देव हो गया इस प्रकार उनचास दिनों से अधिक नौ मास और दो अतर्मुहूर्तों से कम तीन पल्योपम सामान्य मनुष्य के मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अतर होता है । इसी प्रकारसे मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिणियोंमें अतर कहना चाहिये क्योंकि इनसे उनमें कोई भेद नहीं है ।

इस अतरानुगमको पढ़कर सोनीजी विचार करें कि यह द्रव्य शरीरकी स्थितिको लेकर वर्णन है या भावरूप वर्णन है । भावरूप

चाहिये था, शरीर पर्यायें पाच हैं औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस और कार्माण।

हमारा अभिप्राय तो यह है कि नारक शरीर पर्याय तिर्यंच शरीर पर्याय मनुष्य शरीर पर्याय और देव शरीर पर्याय ये चारों गतियों की शरीर पर्यायें गतिमार्गणा में आती है परन्तु सोनीजी खडन में लिखते हैं कि शरीर तो पाच होते हैं चार शरीर तो किसी शास्त्रमें देखे नहीं है अब पाठक ही समझ लेवें कि यह सोनीजी का कथन नव कम्बलवत् कुतर्क मात्र है। एक मनुष्य के पास नवीन कंबल देखकर किसीने कहा कि यह नव कम्बल वाला है परन्तु पास ही कोई कुतर्क से बोला कि इसके पास नो कम्बल कहा हैं? क्या पाच शरीर होते हैं यह बोध हमें नहीं है यह कोई सदुत्तर है? ऐसी २ बे प्रसग की बातोंसे ही उन्होंने अपने ट्रैक्ट का कलेवर बढ़ा दिया है। साधारण लोग समझेंगे उत्तर में बहुत बड़ा ट्रैक्ट लिख डाला है परतु शास्त्रज्ञ जन शास्त्र विपर्यास ही समझेंगे।

सोनीजी की समझदारी? और अर्थ विपर्यास

आगे सोनीजी ने षट् खण्डागमके आशय को बदलने का बहुत बड़ा साहस किया है—वे लिखते हैं—

"सभी मार्गणाऐं भावमार्गणाएं हैं एक वेदका ही नहीं सभी मार्गणाओंका कथन भावकी अपेक्षा लिये हुए हैं।"

सोनीजीका ट्रैक्ट पृष्ठ ४९

यह कोई भावरूप निषेध नहीं है किंतु मनुष्यके सम्बन्धी व्युत्पत्ति मात्र है ऐसे ही मार्गणाओं का भाव, मार्गणार्चना कहा जाता है यह तो व्याकरण शास्त्रके आधार पर व्युत्पत्ति का विचार है। दूसरा मुख्य विचार आचार्योंने यहां पर यह किया है कि "इमेनि" इमानि मार्गणास्थानानि ऐसा पाठ दिया है, उस पर शब्द शास्त्रके आधार पर यह शंका उठाई है कि इमानि यह तो प्रत्यक्ष अर्थ में ही आता है परंतु मार्गणाएँ तो प्रत्यक्ष नहीं है नारकी पर्याय, देव पर्याय आदि गतियां तथा इंद्रिय काय आदि मार्गणाऐं हमसे बहुत दूर हैं हम उन्हें प्रत्यक्ष नहीं करते हैं फिर इदं शब्द से (प्रत्यक्ष रूपसे) उनका ग्रहण कैसे होगा? उत्तरमें आचार्य कहते हैं भले ही अर्थ मार्गणाएँ (वस्तु ज्ञापक मार्गणाएँ) प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु आगम ज्ञानसे जिन्हें संस्कार हो चुका है ऐसे

आचार्योंके हृदयगत जो वस्तु बोध हैं वे तो उनके प्रत्यक्ष हो रहे हैं, पदार्थ भले ही दूर हैं परंतु मानसिक बोध तो उन सबोका उन्हे प्रत्यक्ष है उसी प्रत्यक्षात्मक जो भाव मार्गणाए हैं उन्हीका निर्देश करते हैं। अर्थात् गति काय आदि जो पदार्थ मार्गणा हैं उनका प्रत्यक्ष भले ही नहीं है परतु उन गति आदिका आगम ज्ञान जन्य बोध (भाव) तो मनमें हो रहा है उसी आधार पर हम मार्गणाओंका विवेचन करते हैं यह शब्द शास्त्रके आधार पर शंका का निरसन है। यहा पर भाव मार्गणा को कहेगे द्रव्य मार्गणाको नहीं कहेगे ऐसा कोई कथन नहीं है। सोनीजीने भाव मार्गणा शब्दको देखकर उस प्रकरण को नहीं समझ कर अपने पक्ष पुष्टिका अर्थ कर डाला है और अर्थ मार्गणाके स्थानमें द्रव्य मार्गणा अर्थ कर डाला है।

अन्यथा सोनीजी बतावें कि प्रत्यक्षीभूत पदका वे क्या अर्थ करते हैं ? सिद्धात कौमुदीमें जहा "कोमुदीय विरच्यते" इस चरण में इय पद दिया है वहा इद पदको प्रत्यक्ष वस्तु विधायक मान कर बहुत बड़ा शास्त्रार्थ है ठीक वैसा ही विचार ऊपर है न कि भाव मार्गणा की पुष्टि है। सोनीजीको अपनी पक्ष पुष्टिमें इस प्रकार अर्थका अनर्थ करना उचित नहीं है।

सोनीजी का पूर्वापर विरुद्ध कथन

"षट् खण्डागम के ९३वें सूत्रमें द्रव्यस्त्री का ही विधान है"।

ऐसा पहिले सोनीजी स्वयं मानते थे। उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं:-

"षट्खंडागमके सूत्र नं० ९२ में यह कहा गया है कि मनुष्यिणियां मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में पर्याप्तक भी होती हैं अपर्याप्तक भी होती हैं। क्योंकि मनुष्यिणियां मरकर इन दो गुणस्थानों युक्त ही उत्पन्न होती हैं। जबतक उनके शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक वे अपर्याप्तक होती हैं। और शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर पर्याप्तक होजाती हैं इसलिये इन दोनों गुणस्थानोंमें पर्याप्तक और अपर्याप्त दोनों तरह की मनुष्यिणियां होती हैं।

न ९३ वें सूत्रमें कहागया है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि और संयता संयत गुणस्थानमें पर्याप्तक ही होती है अपर्याप्तक नहीं होती। क्योंकि तीसरे और पांचवें गुणोंमें तो मरण नहीं होता है चौथे में मरण होता है, परंतु उस चौथे गुणस्थान वाला कोई भी जीव मरकर द्रव्यभाव कोई भी मनुष्यिणियोंमें उत्पन्न

नहीं होता। इसलिये इन गुणस्थान वाली स्त्रिया अपर्याप्त नहीं होतीं। पर्याप्तक होजाने पर भी इनके ये गुणस्थान ८ वर्षसे पहले होते नहीं। इसलिये कहागयी है कि इन तीन गुणस्थानों में पर्याप्तक ही होती हैं।

अब विचारणीय बात यहापर यह है कि ये मनुष्यिणियां द्रव्य मनुष्यिणिया हैं या भाव मनुष्यिणिया ? भाव मनुष्यिणिया तो है नहीं क्योंकि भाव तो वेदोंकी अपेक्षासे है, उनका यहा पर्याप्तता अपर्याप्ततामें कोई अधिकार नहीं है क्योंकि भाववेदोंमें पर्याप्तता और अपर्याप्तता ये दो भेद हैं नहीं। जिस तरह कि क्रोधादि कषायोंमें पर्याप्तता और अपर्याप्तता ये दो भेद नहीं हैं। इसलिये स्पष्ट होता है कि ये द्रव्य मनुष्यिणिया हैं, आदिके दो गुणस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त आगेके तीन गुणस्थानोंमें पर्याप्तक इस तरह ५ पाच गुणस्थान कहे गये हैं, इससे भी स्पष्ट होता है कि ये द्रव्य मणुष्यिणिया हैं। भावमनुष्यिणियां होतीं तो उनके ९ या १४ गुणस्थान कहे जाते। किंतु गुणस्थान ५ पाच ही कहे गये हैं।

(दिगम्बर जैन सिद्धात दर्पण द्वितीय अश पृष्ठ १४९-१५०)

पाठक गण सोनीजीकी ऊपरकी पक्तियोंको ध्यानसे पढ़लेवें वे स्वय स्पष्ट लिख रहे हैं कि षट्खण्डागम का ९२ और ९३ वां सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है। वे यह भी कहरहे हैं कि इस ९३ वें सूत्रमें भावस्त्रीका ग्रहण तो नहीं होसकता है क्योंकि

(दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण द्वितीय अंश पृष्ठ १६६)

सोनीजी की इन पंक्तियोंसे दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो वे कहते हैं कि द्रव्य शरीर और द्रव्यवेदका संबन्ध है। और द्रव्य वेद बदलता नहीं है भाववेद बदल जाता है।

अब वे कहते हैं कि शरीरसे द्रव्यवेदका कोई संबन्ध नहीं है। सोनीजी के इस पूर्वापर विरुद्ध कथन को पाठक स्वयं पढ़ लेवें। जिन प्रमाणोंसे वे पहले ९३वें सूत्र को द्रव्यकी विधायक बताते हैं।

इसी प्रकार वे लिखते हैं—

पर्याप्तता अपर्याप्तता पर भी मार्गणा आदिकी तरह शरीर से सम्बन्ध नहीं है। मान भी लिया जाय तो कर्म भूमिके तिर्यंच मनुष्योंमें वेद वैषम्य होने के कारण व्याप्त कर पर्याप्त तिर्यंचों के और पर्याप्त मनुष्योंके तथा योनिनियों और मानुषियोंके क्रमशः द्रव्य पुरुष वेद और द्रव्यस्त्री वेद सिद्ध नहीं होते हैं। जीवट्ठाण तो

"अब विचारणीय बात यह है कि ये मनुष्यिणियां द्रव्य मनुष्यिणियां हैं या भाव मनुष्यिणियां? भाव मनुष्यिणियां तो हैं नहीं क्योंकि भाव तो वेदों की अपेक्षासे है उनका यहां पर्याप्त अपर्याप्ततामें कोई अधिकार नहीं है क्योंकि भाववेदोंमें पर्याप्तता और अपर्याप्तता ये दो भेद हैं नहीं, जिस तरह कि स्त्री आदि भाववेदोंमें पर्याप्तता और अपर्याप्तता ये दो भेद नहीं हैं इसलिये स्पष्ट होता है कि ये द्रव्य मनुष्यिणियां हैं" (दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण द्वितीय अंश पृष्ठ १४९—१५०)

इन पंक्तियोंमें सोनीजी स्वयं स्वीकार करते हैं कि पर्याप्ति अपर्याप्ति का भाववेदोंसे कोई संबंध नहीं है अर्थात् केवल द्रव्य वेदों एवं द्रव्य शरीर से है। इसीलिये वे ९३ वें सूत्र को पर्याप्ति संबंध होनेसे स्पष्ट रूपसे द्रव्य मनुष्यिणी स्वीकार करते हैं। परंतु आज उन्हें पहला अपना लेख सात समुद्र पार पड़ा दीख रहा है।

सोनीजी कहते हैं कि सिद्धांत शास्त्र तो द्रव्यवेद का वर्णन भी नहीं करता है परंतु उन्होंने इस अपने ट्रैक्टमें सभी प्रमाण जीवस्थानके द्रव्य वेदके साधक ही दिये हैं। जिन्हें कि सोनीजी अपने पहले लेख द्वारा स्वयं स्वीकार कर चुके हैं। इस संबंधमें अधिक लिखना व्यर्थ है।

सोनीजी ने आगे अपने ट्रैक्टके पृष्ठ १६१ से लेकर १७० तक यह सिद्ध किया है कि भाव मनुष्यिणियों की पर्याप्त अपर्याप्त होती हैं। और उनके चौदह गुणस्थान आदि होते हैं। हम इस संबंध

में एक मूल बीज भूत सिद्धात बता देते है वह यह है कि जहा भावस्त्रीयोंके पर्याप्त अपर्याप्त भेद बनाये गये हैं और जो ए। चौदह गुणस्थान बताये गये हैं वहां पर भी पयाप्त और अपर्याप्त विशेषण पुरुष द्रव्य वेदी शरीरमे सबंध रखता है। और उन्ही पर्याप्त अपर्याप्त विशेषणोके साथ भावस्त्री वेदमें गुणस्थान घटित किये गये हैं। अन्यथा सोनीजी बतावें कि जब भावस्त्री वेद भी पर्याप्त अपर्याप्त होता है तो उस भावस्त्री वेदीकी पर्याप्तिया क्रम से अतर्मुहूर्त अतर्मुहूर्त में पूर्ण होगी क्या ? यदि होंगीं तो द्रव्य वेदी पुरुष शरीरमें होंगीं या भावस्त्री वेद में ? खुलासा कीजिये फिर पाठक भी समझ लेंगे कि आप उन्हें झमेले में डाल रहे है या कोई तात्विक बात कह रहे हैं।

सोनीजी मूल बातको ओझल कर देना चाहते हैं परतु उसमें भी वे असमर्थ बन जाते हैं उन्होंने स्वय इसी प्रकरण में स्वीकार किया है कि—

"इससे मालूम होता है कि भाव मनुषिणी, स्त्रीवेदका उदय अपर्याप्त अवस्थामे होते हुए भी पुरुषाकार अपना शरीर बनाना शुरू कर देती है"

(सोनीजीका ट्रैक्ट पृष्ठ १६५)

सोनीजी इन पक्तियोंसे स्वय उस बातको स्वीकार करते हैं जो हम कह रहे हैं अर्थात् भावस्त्री वेदका उदय होते हुए भी पर्याप्त अपर्याप्त विशेषण द्रव्य वेदी पुरुष शरीरसे सबध रखता है,

किन्तु भाववी वेदके उदयकी अपेक्षा कथन होनेसे वे विशेषण भाववों के पद दिये जाते हैं। जैसे कि चौदह गुणस्थान होते तो पुरुष द्रव्य वेदमें ही हैं किन्तु भाववेदी की अपेक्षा से घटित किये जाने पर भाववेदके चौदह गुणस्थान मान लिये जाते हैं।

सोनीजी ने आगे वेदके संबंध में भी लिखा है कि भाववेद भी एक भवमें बदल भी जाता है। हम यहां पर इस सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखना चाहते हैं क्योंकि "दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण" ट्रैक्ट में वेदोंका स्पष्टीकरण कर चुके हैं। एक बात लिखकर ही इसका उत्तर दे देते हैं, षट्खण्डागमके जहां मार्गणाओं में गुणस्थानोंको घटाया है वहां कोष्ठक भी दिये गये हैं। उनमें नपुंसक गुणस्थानोंमें एक द्रव्यवेद पुरुष वेद के साथ तीनों भाववेद बताये गये हैं। जब जो भी संभव हो। भाव वेद एक भवमें बदल जाता है इसके प्रमाण सभी शास्त्रोंमें स्पष्ट हैं। क्योंकि भाववेद चारित्र मोहनीय नोकषाय का भेद है। जैसे कषायें एक भव में विपरिणाम द्वारा २ बदलते रहते हैं वैसे भाव वेद भी बदलता रहता है। अतः इस विषय पर हम विशेष लिखना व्यर्थ समझते हैं—

सोनीजीके साथी ऐसा कहते हैं कि एक भवमें भाव वेद तो बदलता नहीं है द्रव्य वेद बदल जाता है। सोनीजी कहते हैं कि द्रव्य वेद भी बदलता नहीं है भाव वेद भी बदलता नहीं है। जो हो। ये सब षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्रकी नई खोजें ऐसी ही हैं जैसा कि अधुनिक इतिहास वादी अथवा विज्ञान वादी अपनी आनुमानिक (अन्दाजिया) सूझ और पहुँचके द्वारा अनेक नई २